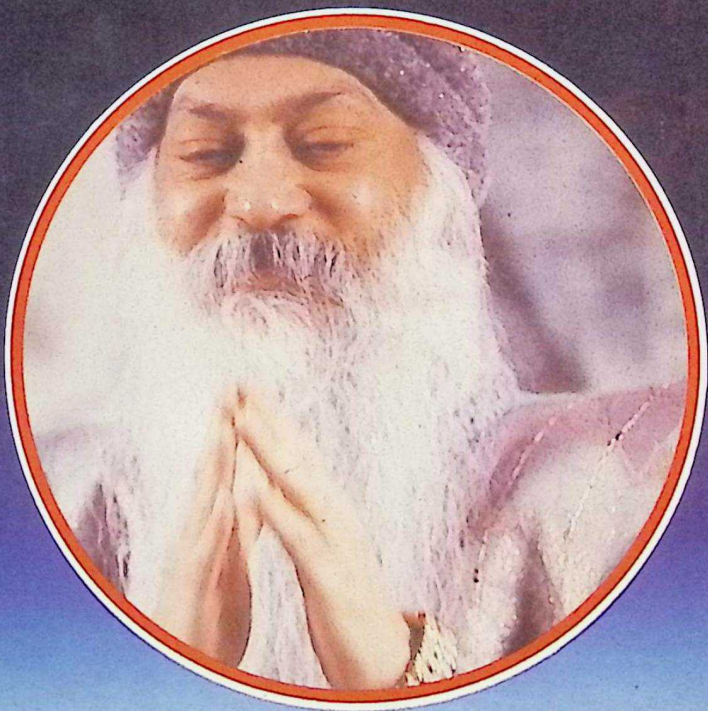


ભગવાન શ્રી રૂઝનીશ

ક્રૂણા:

જિજ્ઞાસા, સ્વોજ, ૩૫ લલ્લિધિ



डायमंड पाकेट बुक्स में

हर घर के लिए उपयोगी पुस्तकें



(राधाकृष्ण श्रीमाली)	
तकनीकी	ज्योतिष 10.00
टेलीविजन सर्वमिग गाइड	6.00
डायमंड हिन्दी सर्वमिग कोर्स	10.00
कंप्यूटर सर्वमिग	6.00
ट्राइबस्टर सर्वमिग	6.00
रिवाइड प्लेयर सर्वमिग	10.00
एयर कन्डीशन सर्वमिग	6.00
कंप्यूटर प्रोग्रामिंग कोर्स	10.00
डायमंड कंप्यूटर फोटोग्राफी	6.00
रेफ्रिजरेशन गाइड	10.00
टेपरवाइडर सर्वमिग	10.00
वीडियो सर्वमिग	10.00
रेडियो सर्वमिग	10.00

धार्मिक सीरीज	
कोटिन्स अर्थशास्त्र	10.00
भागवत सूत्र	10.00
श्रीमद् भागवतपुराण	10.00
श्री देवी भागवत पुराण	10.00
श्री शिव पुराण	10.00
श्रमवेद	10.00
सामवेद	10.00
यजुर्वेद	10.00
अथर्ववेद	10.00
रामायण	10.00
महाभारत	10.00
श्रीमद् भगवत गीता	12.00
शिरडी के साई बाबा	5.00
भर्तृहरि रातक	10.00
चाणक्य नीति	10.00
विदुर नीति	10.00
पाप, भद्र की कहावतें	10.00
विद्यों के दस गुण	20.00
भारत के प्रमुख तीर्थ	10.00
मनुस्मृति	10.00
जैविक रोसावली का	10.00
प्रभु भिन्न का मार्ग	10.00
उत्त पर्व और त्योहार	6.00
गुरु पुराण	10.00
ब्रह्मवैवर्त पुराण	10.00
ब्रह्माण्ड पुराण	10.00
अग्नि पुराण	10.00
स्कन्द पुराण	10.00
नारद पुराण	10.00
श्री विष्णु पुराण	10.00

स्वेट मार्ग	
विता छोड़ो सुख में जिओ	6.00
हंगते-हंगते कैसे जिओ	6.00
आप क्या नहीं कर सकते	5.00
सफलता का रहस्य	5.00

डा. सतीश गोयल	
यौन रोग कारण, निवारण	10.00
मैडिकल सैक्स गाइड	10.00
बृहद वाल्मीय राम सूत्र	10.00
सैक्स और पति पति	10.00
सैक्स संबंध कैसे बढ़ाएं	10.00
सैक्स और स्त्री पुरुष	10.00

खेलकूद सीरीज	
क्रिकेट वर्ल्ड कप	10.00
कंपन देव	10.00
शाहीरक प्रशिक्षण पी.टी.	10.00
एवं ट्रिन गाइड	6.00
मुनीन गावस्कर	10.00
क्रिकेट कैसे खेलें	10.00
बुद्ध, कराटे, योगिता य	6.00
कुंगफू कैसे सीखें	6.00
तेरावी कैसे सीखें	6.00
आधुनिक मल्लयुद्ध	10.00

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, हरियाणा, नई दिल्ली-110002

कृष्ण : जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि

हिमालय की हिमाच्छादित शिखरों, तले मनाली की मनोरम घाटी में भगवान श्री रजनीश द्वारा कृष्ण के बहुआयामी व्यक्तित्व पर दिये प्रवचनों का अपूर्व संकलन ।

पौराणिक देवताओं की इस हिम घाटी में भगवान श्री रजनीश ने मनुष्य जीवन के चेतना आयाम—संन्यास की गौरीशंकर की ऊंचाई दी । इस नव-संन्यास आंदोलन में भगवान श्री रजनीश के 10 लाख संन्यासी शिष्य और करोड़ों प्रेमी हैं, जो दुनिया के हर देश में फैले हैं ।

भगवान श्री रजनीश

डायमंड पाकेट बुक्स में

भगवान श्री रजनीश की अलौकिक पुस्तकें

कृष्ण और हँसता हुआ धर्म

कृष्ण : साधना-रहित सिद्धि

कृष्ण : जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि

कृष्ण : गुरु भी; सखा भी

साक्षी कृष्ण और रासलीला

नहीं जोग नहीं जाप (कबीर वाणी)

गुरु गोविंद दोऊ खड़े (कबीर वाणी)

हीरा पायो गांठ गठियायो (कबीर वाणी)

तेरा साईं तुझ में (कबीर वाणी)

राम नाम रस पीजै (मीरा वाणी)

मेरे तो गिरधर गोपाल (मीरा वाणी)

राम नाम निज औषधि (दादू वाणी)

दादू सहजै देखिए (दादू वाणी)

सम्भोग से समाधि की ओर

ભગવાન શ્રી રજનીશ

કૃષ્ણ:

જિ જાસા, સ્વોજ, ૩૫૯૮૬૬

अनुक्रम

1. अकर्म के पूर्णप्रतीक कृष्ण	5
2. अनंत सागररूप चेतना के प्रतीक कृष्ण	51
3. सीखने की सहजता के प्रतीक कृष्ण	87
4. स्वभाव की पूर्ण खिलावट के प्रतीक कृष्ण	133

संकलन संपादन : स्वामी योग प्रताप भारती

संयोजन : स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

प्रकाशक : डायमंड पाकेट बुक्स प्रा० लि०
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मुद्रक : सोहन प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रथम संस्करण : जुलाई, 1988

मूल्य : दस रुपये

कापीराइट : रजनीशधाम, पूना
सर्वाधिकार सुरक्षित

भगवान श्री रजनीश के सभी चित्रों सभी और शब्दों मूल पाठों पर रजनीशधाम, पूना का प्रकाशनाधिकार कापीराइट है। रजनीशधाम पूना की पूर्व-लिखित अनुमति के बिना पूर्ण या आंशिक सामग्री का पुनः प्रकाशन प्रतिबंधित है।

चौदहवाँ प्रवचन

अकर्म के पूर्ण प्रतीक कृष्ण

2 अक्तूबर 1970, प्रातः; मनाली (कुल्लू)

सर्वप्रथम

सर्वप्रथम सर्वप्रथम

(सर्वप्रथम सर्वप्रथम सर्वप्रथम)

प्रश्न : आपने कहा है कि श्रीकृष्ण के मार्ग में कोई साधना नहीं है। केवल 'सेल्फ रिमेंबरिंग', पुनर्वात्मस्मरण है। लेकिन, आप सात शरीरों की साधना की बात करते हैं। तो सात शरीरों के संदर्भ में कृष्ण की साधना की रूप-रेखा क्या होगी, कृपया इसे स्पष्ट करें।

कृष्ण के विचार दर्शन में साधना की कोई जगह ही नहीं है। इसलिए सात शरीरों का भी कोई उपाय नहीं है। साधना के मार्ग पर जो मील के पत्थर मिलते हैं, वह उपासना के मार्ग पर नहीं मिलते हैं। साधना मनुष्य को जिस भाँति विभाजित करती है, उस तरह उपासना नहीं करती। साधना सीढ़ियाँ बनाती है, इसलिए आदमी के व्यक्तित्व को सात हिस्सों में तोड़ती है। फिर एक-एक सीढ़ी चढ़ने की व्यवस्था करती है। लेकिन उपासना आदमी के व्यक्तित्व को तोड़ती ही नहीं। कोई खंड नहीं बनाती। मनुष्य का जैसा अखंड व्यक्तित्व है, उस पूरे को ही उपासना में लीन कर देती है।

इसलिए साधकों ने तो बहुत-सी सीढ़ियाँ बनायी हैं, बहुत से मील के पत्थर लगाये हैं, बहुत-बहुत विभाजन किये हैं—सप्त-शरीरों में विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का, सात चक्रों में विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का, तीन हिस्सों में विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का; अलग-अलग साधकों ने मनुष्य के व्यक्तित्व को अलग-अलग सीढ़ियों में बाँटकर साधना की है, लेकिन उपासना के जगत में कोई विभाजन नहीं है। वहाँ मनुष्य जैसा है, उस पूरे ही मनुष्य को सिर्फ स्मरण करना है। स्मरण खंड खंड नहीं होता, साधना खंड खंड हो सकती है। किसी आदमी को स्मरण ऐसा नहीं आता कि मैं थोड़ा परमात्मा हूँ और थोड़ा नहीं हूँ। जब

आता है तो पूरा आता है, अन्यथा नहीं आता है ।

स्मरण की प्रक्रिया ही अलग है । स्मरण की प्रक्रिया 'सदन' है 'ग्रेजुअल' नहीं है । स्मरण पूरा-का-पूरा एक ही छलांग में घटित होता है । स्मरण एक विस्फोट है । साधना का एक क्रम है, स्मरण का कोई क्रम नहीं है । जैसे उदाहरण के लिए ऐसा समझें—आपको किसी का नाम पक्की तरह मालूम है । वक्त पड़ा है और याद नहीं आ रहा है । और आप कहते हैं ओंठ पर रखा है, जीभ पर रखा है । बड़े मजे की बात आप कहते हैं । कहते हैं, जीभ पर रखा है और याद नहीं आ रहा है । असल में दोनों बातें आपको याद आ रही हैं कि मुझे याद भी है और याद नहीं भी आ रहा है । बड़ी असमंजस की स्थिति है । आपको मालूम है कि मालूम है, आपको भलीभाँति पता है कि पता है, लेकिन याद नहीं आ रहा है । विस्मरण का मतलब ही यही है कि जो याद है और याद नहीं आ रहा है । मन के किसी गहरे तल को पता है कि याद है, लेकिन मन के ऊपरी तल तक खबर नहीं पहुँच पा रही । बीच में सेतु नहीं बन पा रहा । गहरा मन कहता है कि मालूम है, लेकिन उथला मन कहता है कि मुझ तक खबर नहीं आ रही । इसलिए हम कहते हैं कि जीभ पर रखा है लेकिन याद नहीं आ रहा है । दोनों बातें एक साथ याद आ रही हैं । मालूम है, यह भी याद आ रहा है, याद नहीं आ रहा है, यह भी मालूम हो रहा है ।

फिर आप क्या करते हैं ?

फिर आप बड़ी कोशिश करते हैं । फिर हजार उपाय करते हैं । सिर पर बल दे देते हैं, मुट्ठियाँ कस लेते हैं, सब तरह से खोजते हैं, बीनते हैं और जितना खोजते हैं उतना ही पाते हैं कि याद नहीं आ रहा है । जितना खोजते हैं, उतना ही पाते हैं कि याद आना मुश्किल हुआ जा रहा है । क्यों ? क्योंकि जितना आप खोजते हैं उतने आप 'टेंस' और तनाव से भर जाते हैं । और जितने तनाव से भर जाते हैं उतना ही आपके गहरे मन और आपका संबंध टूट जाता है । तनाव से भरा हुआ मन खंडित हो जाता है, शांत मन इकट्ठा हो जाता है । जितना आप कोशिश करते हैं कि याद



करूँ, याद करूँ, याद करूँ, उतना आप मुश्किल में पड़ते हैं। क्योंकि जो आदमी यह कह रहा है कि मैं याद करूँ, वह साथ ही यह भी स्मरण में रखे हुए है कि मुझे याद नहीं आ रहा है। ये दोहरे सुभाव उसको एक-साथ मिल रहे हैं। बार-बार कह रहा है कि याद करूँ और बार-बार जान रहा है कि याद नहीं आ रहा है, तो उसका आत्मविश्वास कम होता जा रहा है। और मन तनता जा रहा है। वह याद नहीं कर पाएगा। फिर उस आदमी ने कहा कि जाने दो। नहीं आता याद तो जाने दो। वह आदमी बैठकर सिगरेट पीने लगा है, या बगिया में काम करने लगा है, या रेडियो खोलकर सुनने लगा है; या अखबार पढ़ने लगा, और अचानक याद आ गया है। और जब ऐसा याद आता है, तो कभी आधा याद आता है? बस पूरा याद आ जाता है।

क्यों? इस आकस्मिक अ-तनाव की हालत में, 'रिलेक्सेशन' की हालत में क्यों याद आ गया? तनाव मिट गया है, आपने याद करने की बात छोड़ दी, दोनों मन जो टूटे थे—याद करने वाला और जिसे याद था, वे दोनों लड़ रहे थे; याद करने वाला कहता था, याद आना चाहिए और तनाव हुआ था, वही बाधा थी, वही तनाव था। वह छूट गया। आप बगिया में काम कर रहे हैं, या अखबार पढ़ रहे हैं, या रेडियो सुनने लगे हैं और अचानक याद आ गया है। जो कोशिश से याद नहीं आया था, वह अचानक याद आ गया। जो प्रयास से नहीं खोजा जा सका था, वह अप्रयास में उपलब्ध हो गया है। लेकिन जब यह याद आती है तो अधूरी नहीं आती, बस पूरा ही आ जाता है। क्योंकि पूरा ही आपको मालूम है।

यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। यह हमारी सामान्य स्मृति की बात है। इस स्मृति में मन के दो हिस्से काम करते हैं। जिसको हम 'कांसंस माइंड' कहते हैं, वह; जिसको हम 'अनकांसंस माइंड' कहते हैं, वह—हमारा चेतन मन और हमारा अचेतन मन। इसे हम ऐसा समझ ले सकते हैं कि चेतन मन हमारा वह हिस्सा है मन का, जिससे हम चौबीस घंटे काम लेते हैं। अचेतन मन हमारे मन का वह हिस्सा है, जिससे हमें कभी-

कभी काम लेना पड़ता है, चौबीस घंटे काम नहीं लेते। चेतन मन हमारा प्रकाशित मन है, अचेतन मन हमारा अंधकार में डूबा मन है। यह जो स्मृति का मैंने उदाहरण लिया, यह अचेतन में दबी है और चेतन याद करने की कीशिश कर रहा है। चेतन अचेतन के खिलाफ लड़ रहा है। जब तक लड़ेगा तब तक याद नहीं आएगा। जैसे ही लड़ाई छोड़ेगा, दोनों मिल जाएंगे और याद आ जाएगा। और जो अचेतन के द्वार पर खड़ा था, बिल्कुल चेतन में प्रवेश करने को, उसी को आप कह रहे थे कि जीभ पर रखा है।

परमात्मा की स्मृति, या आत्मस्मृति, या 'सेल्फ रिमेंबरिंग' और गहरी बात है। वह अचेतन में नहीं दबा है। उसके नीचे एक और अचेतन मन है, जिसको हम 'कलेक्टिव अनकांसेंस' कहें—हम सबका सामूहिक अचेतन मन। इसे ऐसा समझें कि चेतन मन है हमारा ऊपर का प्रकाशित हिस्सा, उसके नीचे दबा हुआ हमारा अचेतन मन है—हमारा ही व्यक्तिगत अंधेरे में दबा हिस्सा—उसके नीचे हम सबका समूह मन है, वह भी अंधेरे में दबा। और उससे भी नीचे 'कॉल्लेक्टिव अनकांसेंस' है, जो समस्त जगत, समस्त जीवन, समस्तता का अंधकार में दबा हुआ मन है। परमात्मा की स्मृति उस 'कॉल्लेक्टिव अनकांसेंस' में, समष्टि अचेतन में दबी पड़ी है। तो स्मरण का कुल मतलब इतना ही है कि हम अपने भीतर इतने एक हो जाएँ कि न केवल अपने अचेतन से जुड़ जाएँ, समूह अचेतन से जुड़ जाएँ, बल्कि उसके नीचे समष्टि अचेतन से जुड़ जाएँ।

अब जैसे उदाहरण के लिए, जब आप ध्यान में बैठते हैं, तो जब ध्यान की गहराई आती है, तो पहले तो आप व्यक्ति अचेतन में उतरते हैं। आप रोने लगते हैं, हँसने लगते हैं; कोई रोता है, कोई हँसता है, कोई नाचता है, कोई डोलता है, यह आपके व्यक्ति-अचेतन में दबी हुई क्रियाएँ प्रकट होती हैं। लेकिन दस मिनट पूरे होते-होते आप व्यक्ति नहीं रह जाते, आप एक 'कलेक्टिविटी' हो जाते हैं। आप अलग-अलग नहीं रह जाते हैं। जो गहरे उतर जाते हैं, वे समूह अचेतन में उतर जाते हैं। फिर उस क्षण में

उन्हें ऐसा नहीं लगता कि मैं नाच रहा हूँ। उस वक्त ऐसा ही लगता है कि नाच चल रहा है और मैं एक हिस्सा हो गया हूँ। उस वक्त उन्हें ऐसा नहीं लगता है कि मैं हँस रहा हूँ, उस वक्त ऐसा ही लगता है कि हँसी फूट रही है और मैं भी भागीदार हूँ। उस वक्त ऐसा नहीं लगता है कि मैं हूँ; बल्कि ऐसा लगता है कि सब कुछ नाच रहा है, सारा जगत नाच रहा है। चाँद-तारे नाच रहे हैं, पौधे-पक्षी नाच रहे हैं, आसपास जो भी है कण-कण, वह सभी नाच रहा है। उस नाचने के हम एक हिस्से हो गये हैं। तब आप 'कलेक्टिव अनकांसेंस' में उतर गये। तब आप समूह अचेतन में उतर गये।

उसके भी नीचे दबा हुआ 'कॉज्मिक अनकांसेंस' है। उसमें जिस दिन आप उतर जाएँगे—यह 'कलेक्टिव' से ही उतरेंगे; यह समूह-चित्त जब और-और गहरा होता जाएगा तब आपको यह भी पता नहीं चलेगा कि सब नाच रहे हैं और मैं एक हिस्सा हूँ, आपको यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं हिस्सा हूँ, आपको यही पता चलेगा कि सब और मैं एक ही हूँ। हिस्सा भी नहीं हूँ। 'टोटल' का मैं एक भाग नहीं हूँ, मैं ही 'टोटल' हूँ। जिस क्षण ऐसी प्रतीति होगी उसी क्षण 'कॉज्मिक अनकांसेंस' से तीर की तरह कोई स्मरण आपके चेतन मन तक उठकर आ जाता है। उस वक्त आपको स्मरण होता है कि मैंने तो जाना जो मुझे पता ही था कि मैं कौन हूँ। मैं ब्रह्म हूँ, अहं ब्रह्मास्मि का बोध उस क्षण में आपके चेतन तक फैल जाता है। यह जो स्मरण की प्रक्रिया है, यह मैंने चार हिस्सों में बाँटे आपको समझाने के लिए। कृष्ण इसको बाँटते ही नहीं। यह समझाने के लिए बाँटे कि आपको कठिन होगा। ये अलग-अलग चार चीजें नहीं हैं, यह एक ही चीज का फैलाव है, गहरे और गहरे, और गहरे। और जितना गहरा होता है, उतना हम खंड को अलग नाम दे रहे हैं।

हमारे बहुत गहरे में हमें पता ही है कि हम परमात्मा हैं। हमें परमात्मा होना नहीं है, सिर्फ 'डिसकॉवर' करना है, सिर्फ आविष्कार करना है, उघाड़ना है। ऋषि कहते हैं उपनिषद में कि स्वर्ण-पात्र से ढँका

है जो सत्य, तू उसे उघाड़ दे। वह जो ढँका है उसे तू उघाड़ दे। परमात्मा होना हमारी उपलब्धि नहीं है, सिर्फ उघड़ना है, 'अनकँवर' होना है। कुछ जो ढँका है, वह उघड़ जाए। किससे ढँका है? हमारी ही विस्मृति से ढँका है। हम अपने मन के बिल्कुल अग्रिम भाग में जी रहे हैं, जैसे कोई बड़े भवन में रहता हो और अपनी दहलान में जीता हो। और धीरे-धीरे दहलान में ही पैदा हुआ हो, दहलान में ही बड़ा हुआ हो, दहलान में ही जिआ हो और भूल ही गया हो, उसे पता ही न हो कि उसका बड़ा भवन भी है। उसे पता ही न हो, वह दहलान में जी लेता हो, सो जाता हो, काम करता हो, खाता हो, पीता हो और उसे याद ही न हो कि एक बड़ा भवन भी है उस दहलान से जुड़ा हुआ। असल में कोई दहलान अकेली नहीं होती। कभी देखी है कोई दहलान अकेली? दहलान किसी बड़े भवन का हिस्सा ही होती है। उस बड़े भवन का हमें कोई पता नहीं है। हम अपने चेतन मन में ही जी रहे हैं, वह हमारी दहलान है। वह हमारा सिर्फ बाहर का हिस्सा है जहाँ छपरी पड़ती है। इससे ज्यादा नहीं है। लेकिन हमें कोई पता नहीं है भीतर का। उस भीतर का भी हमारे बहुत गहरे में स्मरण है पर उस भीतर की अपनी गहराई में भी हम नहीं उतरे हैं। इस भीतर की गहराई में उतर जाना खंड में नहीं होगा। चर्चा और समझाना खंड में होगा।

साधना के मार्ग से जो चलते हैं, वह एक-एक खंड को साधने की कोशिश करते हैं। कृष्ण कहते ही इतना हैं कि तुम परमात्मा हो, इसे स्मरण करना है। इसलिए उपनिषद बार-बार कहते हैं, स्मरण करो, स्मरण करो। सिर्फ 'रिमेंबर' करना है कि कौन हैं हम। यह हम भूल गये हैं, यह हमने खो नहीं दिया है। यह कुछ ऐसा भी नहीं है कि हमारा कोई भविष्य है, जो हमें होना है। सिर्फ विस्मरण है। बहुत बात बदल जाती है। साधना में सिर्फ विस्मरण नहीं है, साधना के ख्याल में कोई चीज खोयी गयी है। या कोई चीज अभी हुई ही नहीं है जो होनेवाली है। या साधना के क्रम में कुछ चीज गलत जुड़ गयी है जिसे काटना होगा, अलग करना होगा। स्मरण

की प्रक्रिया में न कुछ काटना है, न कुछ अलग करना है, न कुछ गलत जुड़ गया है, न हमें कुछ होना है, न हम अन्यथा हो गये हैं, हम जो हैं वह हैं, सिर्फ विस्मरण है। वस विस्मरण के अतिरिक्त और कोई पर्दा नहीं है।

कृष्ण का सारा-का-सारा आधार उपासना का है और उपासना का सारा आधार स्मरण का है। लेकिन भूल गये उपासक स्मरण को। उसकी जगह उन्होंने सुमिरन शुरू कर दिया। स्मरण को भूल गये, अब वह सुमिरन कर रहे हैं ! बैठे हैं और राम-राम जप रहे हैं। राम-राम जपने से याद न आएगा कि मैं राम हूँ। स्मरण शब्द धीरे-धीरे सुमिरन बन गया। स्मृति शब्द धीरे-धीरे सुरति बन गया। और उस शब्द के दूसरे ही 'कनो-टेशन' और दूसरे ही अर्थ हो गये। एक आदमी बैठकर अगर यह भी दोहराता रहे कि मैं परमात्मा हूँ, मैं परमात्मा हूँ, तो भी कोई हल न होगा। यह दोहराने से हल न होगा। इसके दोहराने से, 'रिपीटीशन' से कोई वास्ता नहीं है। इससे भ्रम भी पैदा हो सकता है कि वह आदमी नीचे तो उतर ही न पाये और चेतन मन में ही समझने लगे कि मैं परमात्मा हूँ और भीतर के तलों का उसे कोई बोध ही न हो।

इसलिए स्मरण की क्या होगी प्रक्रिया ? क्या होगा मार्ग ? क्या होगा द्वार ? मेरे देखे अगर आप शांत और शून्य सिर्फ बैठ जाएँ, कुछ न करें—आपका कुछ भी करना बाधा बनेगा। असल में करने से हम वह पा सकते हैं जो हम नहीं हैं। करने से वह मिल सकता है जो हमारे पास नहीं है। इसलिए स्मरण का बहुत गहरा अर्थ तो 'टोटल इनएक्टीविटी' है, अकर्म है। इसलिए कृष्ण बहुत जोर देते हैं अकर्म पर। वह निरंतर कहे जाते हैं; अकर्म। गहरे में अकर्म, 'नो एक्टीविटी'। जैसा मैंने आपसे कहा कि छोटी-सी चीज भी भूल जाते हैं, तो जब तक आप 'एक्टिवली' उसको याद करने की कोशिश करते हैं, नहीं कर पाते हैं। लेकिन जब आप उस हिस्से को छोड़ देते हैं और उस हिस्से में 'इनएक्टिव' हो जाते हैं, अकर्म में हो जाते हैं, तब वह स्मरण आ जाता है। अगर हम 'टोटल इनएक्टिविटी' में हो जाएँ तो वह जो 'कॉज़मिक अनकांसेंस' में है, वह जो ब्रह्मांड-अचेतन में

पड़ा है, वह एकदम तीर की तरह उठता है। जैसे बीज फूटता है अंकुर की तरह, ऐसे ही हमारे चित्त के किसी गहरे से बीज टूटता है और एक अंकुर उठकर हमारे चेतन मन के प्रकाश तक आ जाता है, और हम जानते हैं कि हम कौन हैं। अकर्म है सूत्र। साधना में सदा कर्म है सूत्र। साधना में सदा क्रिया है मार्ग। उपासना में सदा अक्रिया है द्वार, अकर्म है मार्ग।

कृष्ण के इस अकर्म को थोड़ा ठीक से समझ लेना अच्छा होगा। क्योंकि मैं मानता हूँ कि इसे ठीक से नहीं समझा जा सका। इसे समझना बहुत मुश्किल था। क्योंकि जिन लोगों ने कृष्ण पर टीकाएँ लिखी हैं और जिन लोगों ने कृष्ण की व्याख्या की है, उनकी किसी की भी पकड़ में अकर्म नहीं बैठ सका। या तो अकर्म का मतलब उन्होंने समझा कि संसार छोड़कर भाग जाओ। लेकिन छोड़कर भागना एक कर्म है। छोड़ना एक कर्म है, एक कृत्य है। अकर्म का निरंतर यही मतलब समझा गया कि तुम कुछ भी मत करो। दुकान मत करो, काम मत करो, गृहस्थी मत करो, प्रेम मत करो, भाग जाओ सब छोड़कर। सिर्फ भागना करो। सिर्फ त्यागना करो। लेकिन त्याग उतना ही कर्म है, जितना भोग कर्म है। तो कृष्ण को नहीं समझा जा सका। अकर्म का मतलब छोड़ना, भागना, त्यागना हो गया। हिंदुस्तान की लंबी परंपरा त्याग रही है, छोड़ रही है, भाग रही है। और कोई गौर से नहीं देखता कि कृष्ण बिल्कुल भागे हुए नहीं हैं। कभी-कभी हैरानी होती है कि एक लंबी परंपरा भी अन्धी हो सकती है। कोई यह नहीं देख रहा है कि जो आदमी अकर्म की बात कर रहा है, वह गहन कर्म में खड़ा हुआ है। इसलिए भागना उसका अर्थ हो नहीं सकता।

कृष्ण तीन शब्दों का प्रयोग करते हैं—अकर्म, कर्म और विकर्म। कर्म वे उसे कहते हैं, सिर्फ करने को ही कर्म नहीं कहते। अगर करने को ही कर्म कहें, तब तो अकर्म में कोई जा ही नहीं सकता। फिर तो अकर्म हो ही नहीं सकता। कर्म को कृष्ण ऐसा करना कहते हैं जिसमें कर्ता का भाव है। जिसमें करने वाले को यह ख्याल है कि मैं कर रहा हूँ। मैं कर्ता हूँ। 'इगो-सेंट्रिक' कर्म को वे कर्म कहते हैं। ऐसे कर्म को, जिसमें कर्ता मौजूद है।

जिसमें कर्ता यह ख्याल करके ही कर रहा है कि करने वाला मैं हूँ, जब तक मैं करने वाला हूँ, तब तक हम जो भी करेंगे वह कर्म है। अगर मैं संन्यास ले रहा हूँ, तो संन्यास एक कर्म हो गया। अगर मैं त्याग कर रहा हूँ, तो त्याग एक कर्म हो गया।

अकर्म का मतलब ठीक उल्टा है। अकर्म का मतलब है ऐसा कर्म, जिसमें कर्ता नहीं है। अकर्म का अर्थ, ऐसा कर्म जिसमें कर्ता नहीं है। जिसमें मैं कर रहा हूँ, ऐसा कोई बिंदु नहीं है। ऐसा कोई केंद्र नहीं है जहाँ से यह भाव उठता है कि मैं कर रहा हूँ। अगर मैं कर रहा हूँ, यह खो जाए, तो सभी कर्म अकर्म है। कर्ता खो जाए तो सभी कर्म अकर्म है। इसलिए कृष्ण का कोई कर्म कर्म नहीं है, सभी कर्म अकर्म है।

कर्म और अकर्म के बीच में विकर्म की जगह है। विकर्म का अर्थ है, विशेष कर्म। अकर्म तो कर्म ही नहीं है, कर्म कर्म है; विकर्म का अर्थ है, विशेष कर्म। इस शब्द को भी ठीक से समझ लेना चाहिए, दोनों के बीच में खड़ा है।

विशेष कर्म किसे कहते हैं कृष्ण ? जहाँ न कर्ता है, और न कर्म है। फिर भी चीजें तो होंगी। फिर भी चीजें तो होंगी ही। आदमी स्वाँस तो लेगा ही। न कर्म है, न कर्ता है। स्वाँस तो लेगा ही। स्वाँस कर्म तो है ही। खून तो गति करेगा ही शरीर में। भोजन तो पचेगा ही। यह कहाँ पड़ेंगे ? यह विकर्म है। यह मध्य में हैं। यहाँ न कर्ता है, न कर्म है। साधारण मनुष्य कर्म में है, संन्यासी अकर्म में है, परमात्मा विकर्म में है। वहाँ न कोई कर्ता है, न कोई कर्म है। वहाँ चीजें ऐसी ही हो रही हैं, जैसे स्वाँस चलती है। वहाँ चीजें बस हो रही हैं। 'जस्ट हैपनिंग'।

आदमी के जीवन में भी ऐसा थोड़ा-कुछ है। वह सब विकर्म है। लेकिन वह परमात्मा के द्वारा ही किया जा रहा है। आप स्वाँस ले रहे हैं ? आप स्वाँस लेते होंगे, फिर कभी भर न सकेंगे। मौत खड़ी हो जाएगी और आप स्वाँस लिये चले जाएँगे। या जरा स्वाँस को रोक कर देखें, तो पता चलेगा कि नहीं रुकती है। होकर रहेगी। जरा स्वाँस को बाहर ठहरा दें,

तो पता चलेगा नहीं मानती है, भीतर जाकर रहेगी। न हम कर रहे हैं, न हम कर्ता हैं, श्वास के मामले में। जीवन की बहुत कियाएँ ऐसी ही हैं। अकर्म में वह आदमी प्रवेश कर जाता है जो विकर्म के इस रहस्य को समझ लेता है। फिर वह कहता है, फिर नाहक मैं क्यों कर्ता बनूँ ! जब जीवन का सभी महत्वपूर्ण हो रहा है, तो मैं क्यों बोझ लूँ ? वह बड़ा होशियार आदमी है, वह 'वाइज़ मैन' है।

वह उस तरह का आदमी है कि मैंने सुना है कि एक आदमी ट्रेन में सवार हुआ और अपने पेटी-बिस्तर को अपने सिर पर लेकर बैठ गया। पास-पड़ोस के यात्रियों ने उससे कहा कि यह पेटी-बिस्तर सिर पर क्यों लिये हो ? इनको नीचे रख दो। उस आदमी ने कहा, ट्रेन पर बहुत वजन पड़ेगा। तो यह सोचकर कि मैं अपने सिर पर रख लूँ, थोड़ा वजन मैं भी बँटा लूँ। यात्री बहुत हैरान हुए। उन यात्रियों ने कहा, तुम पागल तो नहीं हो ? क्योंकि तुम अपने सिर पर रखोगे तो भी ट्रेन पर वजन तो पड़ता ही रहेगा। ट्रेन पर वजन पड़ेगा ही और तुम पर नाहक पड़ेगा। तो वह आदमी हँसने लगा। और उस आदमी ने कहा कि मैं तो समझता था तुम सब संसारी हो, लेकिन तुम संन्यासी मालूम पड़ते हो। मैं तो तुम्हें देखकर यह सिर पर रखे था।

वह आदमी एक संन्यासी था। उसने कहा, मैं तो तुम्हें देखकर ही यह सिर पर रखा था, लेकिन तुम भी हँसते हो ? पूरी जिदगी में तुमने वजन कहाँ रखा है ? अपने सिर पर रखा है, या परमात्मा पर छोड़ दिया है ? क्योंकि तुम अपने सिर पर भी रखो तो भी परमात्मा पर ही पड़ता है। यह तुम अपने सिर पर क्यों रखे हो ? तो उसने कहा कि मैं तो समझा कि यहाँ संसारी बैठे हैं, इसलिए इनके ढंग से बैठना चाहिए। मुझे क्या पता था कि यहाँ संन्यासी बैठे हैं ! उसने न केवल नीचे रखा वजन, बल्कि वजन के ऊपर बैठ गया। उसने कहा कि अब मैं अपनी ठीक स्थिति में बैठ सकता हूँ। यह मेरा ढंग है। लेकिन सोचकर कि तुम सबको अजीब न लगे !

जो विकर्म को समझ लेगा, वह अकर्म में जाएगा। कर्म हमारी स्थिति है, जैसे हम जी रहे हैं। विकर्म हमारी समझ होगी, अकर्म हमारा होना हो जाएगा।

कृष्ण की साधना, उपासना—जो हम नाम देना चाहें—उसमें गहरे में अकर्म है। आपको कुछ करना नहीं है, जो हो रहा है उसे होने देना है। आपके कर्ता को मिट जाने देना है। जिस दिन आपका कर्ता मिटा कि बीच की दीवाल टूट जाएगी और स्मरण आ जाएगा। कर्ता ही आपकी बाधा है। 'दंडूअर,' वह जो करने वाला है, जो कह रहा है मैं कर रहा हूँ, वही पत है स्टील की, लोहे की, जिसके नीचे पड़ी दबी है स्मृति। और जब तक आप कर्ता बने रहेंगे तब तक स्मृति नहीं लौटेगी। इसलिए बैठकर राम-राम दोहराने से नहीं होगा, बैठकर यह कहने से कि मैं परमात्मा हूँ नहीं होगा, क्योंकि मैं आपसे कहता हूँ कि यह आपका कर्ता ही दोहरा रहा है। यह आप ही दोहरा रहे हो, यह आपका कर्ता ही कह रहा है कि मैं हूँ। कृपा करके कर्ता को जाने दें।

कैसे जाएगा कर्ता ?

विकर्म को समझें। कर्म करते रहें और विकर्म को समझें। कर्म करते रहें और जीवन को समझें। 'दें वेरी अंडरस्टैंडिंग'। जिंदगी की समझ बताएगी कि मैं क्या कर रहा हूँ—न मैं जन्मता हूँ, न मैं मरता हूँ, न मैं श्वास लेता हूँ, न मुझसे कभी किसी ने पूछा कि आप होना चाहते हैं ? न मुझसे कोई कभी पूछेगा कि अब जाने का वक्त आ गया, आप जाना चाहते हैं ? न मुझसे कोई कभी पूछता कि कब मैं जवान हो जाता हूँ, कब बूढ़ा हो जाता हूँ। कोई मुझसे पूछ ही नहीं रहा है, मेरा कुछ होना नहीं है। मैं न रहूँ, तो क्या फर्क पड़ जाएगा। मैं नहीं था तो क्या फर्क था ? चाँद-तारे कुछ फीके थे ? फूल कुछ कम खिलते थे ? पहाड़ कुछ छोटे थे ? बादल कुछ गमगीन थे ? सूरज कुछ परेशान था ? मैं नहीं था तब सब ऐसा था। मैं जब नहीं रहूँगा तब सब ऐसा रहेगा। जैसे पानी पर खींची गयी रेखा मिट जाए, ऐसे मैं मिट जाऊँगा। कहीं कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। सब ऐसा ही

चलता रहेगा। सब ऐसा ही चलता रहा है। तो मैं नाहक यह 'मैं' को क्यों ढोऊँ? जब मेरे बिना सब ऐसा चलता रहेगा तो मैं भी मेरे बिना क्यों न चल जाऊँ। जब मेरे बिना कहीं भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा, तो मैं ही नाहक मुझमें इस 'मैं' से क्यों फर्क डालूँ।

विकर्म की समझ का नाम प्रज्ञा है। विकर्म की समझ का नाम 'विजडम' है। जो विकर्म को समझ लेता, वह सब समझ लेता है। तब कर्म एकदम अकर्म हो जाता है। विकर्म कीमिया है, वह बीच का द्वार है। कर्म से गुजरते वक्त पड़ेगा विकर्म, और अकर्म में स्मरण आ जाता है। आपको लाना नहीं पड़ता। जिस स्मरण को आप लाएँगे, वह कर्म होगा। जो स्मरण आएगा, वही आपके कर्ता के बाहर से आएगा। 'कॉज्मिक' से आएगा, ब्रह्मांड से आएगा। इसलिए वेद को हम कह सके कि यह अपौरुषेय है। इसका यह मतलब नहीं है कि जिन्होंने लिखा वह आदमी नहीं थे। इसलिए हम अपौरुषेय कह सके कि जो खबरें उन्होंने वेद में दी हैं वह उनके पुरुष से नहीं आयी थीं, वे उनके पुरुष के पार से आयी थीं। वे उनकी 'पर्सनैलिटी' के बाहर से आयी थीं, वे उनके होने के आगे से आयी थीं, वे 'कॉज्मिक' खबरें थीं। इसलिए हम कह सके कि वेद जो है, वह ईश्वर का वचन है।

उसका वह मतलब नहीं है कि वेद ही ईश्वर का वचन है। जब भी किसी के भीतर से व्यक्ति के पार से कोई खबर आती है, वह ईश्वर का वचन होता है। इसलिए मुहम्मद के कुरान को कहा जा सका कि वह ईश्वर का इलहाम है, उसकी तरफ से दिया गया ज्ञान है। इसलिए जीसस कह सके कि मैं तुमसे जो कह रहा हूँ वह मैं नहीं कहता, वह परमात्मा ही कह रहा है। इसलिए कृष्ण तो सीधा कह सके कि मैं हूँ ही नहीं, परमात्मा ही है। यह सब मैं ही करवा रहा हूँ, यह खेल, यह युद्ध, यह सब मैं ही करवा रहा हूँ। और तू घबड़ा मत अर्जुन, क्योंकि जिन्हें तू मारेगा, उन्हें मैं पहले ही मार चुका हूँ। वे मर ही चुके हैं, सिर्फ तेरा काम उन तक खबर पहुँचाने का है कि तुम मर गये हो और कोई बात नहीं है ज्यादा, यह काम मैं कर

ही चुका हूँ, यह हो ही चुका है; यह जो व्यक्ति बोल रहा है, अब व्यक्ति नहीं है, अब 'कॉज्मिक' खबर है। यह ब्रह्मांड के गहरे से आयी हुई सूचना है कि यह जो सामने तुझे जिंदा दिखाई पड़ते हैं, मैं कहता हूँ कि ये मर ही चुके हैं, घड़ी-दो-घड़ी की देर है, उसमें तू निमित्त भर है। तो तू यह मत सोच कि तू मार रहा है। तू मार रहा है तब तू भयभीत हो जाएगा। कर्ता आया कि भय आया, कर्ता आया कि चुनाव आया, कर्ता आया कि चिंता आयी, कर्ता आया कि संताप आया। तो तू यह सोच ही मत, तू यह जान ही मत, तू भूल में पड़ा है, तू यह नहीं कर रहा है। तू 'कॉज्मिक' के हाथों में, ब्रह्म के हाथों में एक इशारे से ज्यादा नहीं है, एक 'गेस्चर' से ज्यादा नहीं है। करने दे उसे वह जो कर रहा है, तू अपने को छोड़। इसलिए वे कहते हैं, 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' ... तू सब छोड़-छाड़ कर आ। तू अपने को छोड़ कर आ, तू अकर्म में आ जा।

अकर्म प्रक्रिया है स्मरण की।

प्रश्न : भगवान श्री, अभी आपने कर्म, अकर्म और विकर्म पर बड़ी गहरी और बड़ी असाधारण चर्चा की। कश्मीर-प्रवास के समय भी जिस समय महेश योगी के विदेशी शिष्यों के सामने आत्म-साक्षात्कार की बात आयी थी, उस समय भी आपने उन्हें अकर्म का ही बोध कराया था। इसमें कहीं कोई 'कन्फ्यूजन' नहीं लगता है। लेकिन कृष्ण ने जो कुछ गीता में कहा, उसमें थोड़ा-सा 'कन्फ्यूजन' जरूर दिखायी पड़ता है। गीता के चौथे और पांचवें अध्याय में अकर्म-दशा पर कृष्ण ने भी जोर दिया है, किन्तु गीता की अकर्म-दशा दोहरी भासित होने के कारण 'कन्फ्यूजन' पैदा करती है। दोहरी इस प्रकार कि पहले कृष्ण कहते हैं कि सब कर्म करके वे कतई किये न हों, ऐसा होना योग बताया है; और कर्म कतई न करते हुए सब कर्म किये हों, ऐसा होना संन्यास है। यह दोहरी बात तत्त्वतः क्या है, इस पर कुछ प्रकाश डालें।

भगवान श्री, साथ में एक प्रश्न और ले लें।

शांकरभाष्य में, ज्ञानी को कर्म की जरूरत ही नहीं — ऐसा शंकराचार्य

प्रस्तुत करते हैं। और कर्मी को ही कर्म करना उनको मंजूर है। और अभी आपने बताया कि हमें कुछ करना नहीं है, तो अर्जुन केवल यंत्र ही नहीं रह जाएगा? उसकी 'इंडिवीजुअलिटी' का क्या होगा?

कृष्ण कहते हैं, सब कर्म किये हों और फिर भी ऐसा होना कि कर्म किये ही नहीं हैं, योग है। सब कर्म किये हों, फिर भी ऐसा होना कि किये ही नहीं हैं, योग है। अर्थात् अकर्ता में प्रतिष्ठित होना योग है। दूसरी बात वे जो कहते हैं, वह इसी बात का दूसरा पहलू है। कुछ भी न करते हुए जानना कि सब कुछ किया है, संन्यास है।

संन्यास और योग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। निश्चित ही पहलू उल्टे होते हैं। लेकिन एक ही सिक्के के दो पहलू जुड़े होते हैं और तय करना बहुत मुश्किल है कि पहला पहलू कहाँ खत्म होता है और दूसरा कहाँ शुरू होता है। उल्टे होते हैं, दोनों की एक-दूसरे की तरफ पीठ होती है, लेकिन अगर हम सिक्के को चीरें-फाड़ें और तय करने जाएँ कि सामने वाला पहलू कहाँ खत्म होता है और पीछे वाला पहलू कहाँ शुरू होता है, तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। वे दोनों कहीं खत्म नहीं होते, दोनों बिल्कुल ही एक-साथ जुड़े होते हैं। जिसे हम पृष्ठभूमि कह रहे हैं, जिसे हम पिछला पहलू कह रहे हैं, वह अगले पहलू की ही पीठ होती है।

तो अगर हम ज्ञानी को उसके चेहरे की तरफ से पकड़ें तो वह योगी मालूम पड़ेगा और उसकी पीठ की तरफ से पकड़ें तो वह संन्यासी मालूम पड़ेगा। और कृष्ण की दोनों परिभाषाओं में कोई 'कन्फ्यूजन' नहीं है। वह ज्ञानी की दोनों तरफ से परिभाषा कर रहे हैं। वह यह कह रहे हैं कि वह करते हुए न करता है, न करते हुए करता है। और ध्यान रहे, ज्ञानी में ये दोनों बातें एक-साथ ही हो सकती हैं, एक अलग नहीं हो सकती। क्योंकि जो आदमी करते हुए न करता है, वही न करते हुए करता हो सकता है। ये दोनों बातें एक ही चीज के पहलू हैं, और ध्यान रहे, कोई भी सिक्का एअ पहलू का नहीं होता, अब तक बनाया नहीं जा सका। दूसरा पहलू होगा ही। कहाँ से हम पकड़ते हैं, यह हम पर निर्भर करेगा। कृष्ण दोनों

तरफ से पकड़ते हैं। और वह अर्जुन को सब तरह से समझाने की कोशिश कर रहे हैं। वह उसको यह कह रहे हैं कि अगर तू योग में उत्सुक हो गया है तो योगी का यह मतलब है कि करते हुए न करने को उपलब्ध हो जा। अगर तू कहता है मुझे योग वगैरह से कोई मतलब नहीं, मैं तो संन्यास ले लूंगा, मैं तो सब छोड़कर चला जाऊंगा; मुझे योग वगैरह की गहन चर्चा में मत उलझाइये, मैं तो यह देखकर दुख और यह भय और यह ओह पीड़ित हूँ, मैं इनको नहीं मारता, मैं संन्यास ले लूंगा, तो वह उससे कहते हैं कि तू संन्यासी ही हो जा, लेकिन संन्यासी का मतलब ही यह है वह कहते हैं कि जो कुछ न करते हैं, वह भी सब करता है।

वह अर्जुन को सब तरफ से घेरा डाल रहे हैं, और कुछ भी नहीं। इस लिए कई जगह उनके वक्यव्य 'कंट्राडिक्ट्री' मालूम पड़ते हैं। आपके साथ मेरी वही हालत हो जाती है। आपको मैं सब तरफ से घेरा डालता हूँ, आप एक तरफ से कहते हैं, यह नहीं, तो मैं कहता हूँ जाने दो, चल दूसरी तरफ से शुरू करें। लेकिन आप कहीं से भी राजी हो जाएँ। जहाँ आप राजी नहीं हुए थे, अखीर में आप पाएँगे कि दूसरी तरफ से राजी होकर आप उस छोर पर भी पहुँच गये हैं जहाँ आप राजी नहीं हुए थे। अर्जुन कहीं से भी राजी हो जाए, वह योगी होने को राजी हो जाए तो कृष्ण कहते हैं, चलो चलेगा। क्योंकि वह जानते हैं कि एक सिक्के में दो पहलू होते हैं, वह दूसरा पहलू वच नहीं सकता। तुम कहते हो हम सीधा सिक्का लेंगे, लो। उसका उल्टा सिक्का कहाँ जाएगा, वह तुम्हारे हाथ में पहुँच जाएगा।

एक तो ताओइस्ट कहानी है, वह मैं आपसे कहूँ, उससे ख्याल में आ जाएगा—

लाओत्से के फकीरों ने बड़ी अद्भुत कहानियाँ कही हैं। ऐसी कहानियाँ दुनियाँ में किसी ने भी नहीं कहीं। एक फकीर है। जंगल में रहता है वह, उसने दस-बीस बंदर पाल रखे हैं। एक दिन सुबह कोई आ गया है जिज्ञासु और उससे ऐसा सवाल पूछा है जैसा सवाल आपने पूछा। उसने कहा है कि कभी आप ऐसा कहते हो, कभी आप ऐसा कहते हो, हम बड़े 'कन्फ्यूजन' में

पड़ जाते हैं। सांभ आप कुछ कहते हो, सुबह आप कुछ कहते हो, हम बड़े उलझन में पड़ जाते हैं। तो उस फकीर ने कहा, तू बैठ और देख। उसने अपने बंदरों को बुलाया और उनसे कहा कि सुनो बंदरो, आज से तुम्हारे भोजन में परिवर्तन किये देता हूँ। बंदरों को रोज सुबह चार रोटियाँ मिलती थीं, शाम तीन रोटियाँ मिलती थीं। उसने कहा कि उलट-फेर किये देता हूँ। आज से तुम्हें सुबह तीन रोटियाँ मिलेंगी और सांभ चार रोटियाँ मिलेंगी। बंदर एकदम नाराज हो गये और उन्होंने कहा कि हम बगावत कर देंगे, यह बर्दाश्त के बाहर है, यह परिवर्तन हम नहीं सह सकते। हम तो अपने पुराने नियम पर कायम रहेंगे। चार रोटी सुबह चाहिए। उसने कहा, यह नहीं होगा। तीन रोटी मिलेंगी सुबह, चार रोटी शाम मिलेंगी। बंदर हमला करने को उतारू हो गये। उसने कहा, अच्छा भाई ठहरो, तुम चार सुबह ले लो। बंदर बड़े प्रसन्न हुए। उसने उस आदमी की तरफ मुँह फेरा और उसने कहा कि सुनते हो, रोटियाँ सात ही मिलनी हैं, मगर बंदर तीन सुबह मिलेंगी इससे बहुत नाराज हैं। अभी भी सात ही मिलेंगी, वे चार सुबह लें कि चार सांभ लें, कि तीन सुबह लें कि तीन सांभ लें; लेकिन अब वे प्रसन्न हैं।

अर्जुन को कृष्ण ऐसे ही घेर रहे हैं। वे कभी उसको कहते हैं कि अच्छा तू तीन ले ले। वह कहता है कि यह नहीं हो सकता। तो वह कहते हैं, चार ले ले। रोटियाँ सात ही हैं। उसको कैसे अर्जुन लेने को राजी होगा, यह अर्जुन पर छोड़ते हैं। इसलिए इतनी लंबी गीता चलती है। वह बार-बार बदलते हैं कि अच्छा यह कर ले। अच्छा तू भक्त हो जा, अच्छा तू योगी हो जा, अच्छा तू कर्मयोग साध ले, अच्छा तू भक्तियोग साध ले, अच्छा नहीं तो ज्ञानयोग साध ले, तू क्या कहता है वही साध ले। मगर वह रोटियाँ सात हैं। अर्जुन को गीता के आखीर-आखीर तक समझ में आता है कि रोटियाँ सात, और यह आदमी सात रोटियों से ज्यादा देगा नहीं, फिर कहीं से भी लिया जाए इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता।

दूसरे प्रश्न का उत्तर।

शंकर की परिभाषा पक्षपाती की परिभाषा है। शंकर की परिभाषा चुनाव की परिभाषा है। शंकर कर्म के सख्त विरोध में हैं। वे कहते हैं, कर्म ही बंधन है। वे कहते हैं, कर्म ही अज्ञान है। कर्म को छोड़े बिना उपाय नहीं। यहाँ वे कृष्ण के अकर्म को कर्म का छोड़ना बना लेते हैं कि कर्म छोड़ो। और कर्म के छोड़ने का मतलब भी वे यही लेते हैं कि जो-जो कर्मों का संसार है, जो कर्म वाले का जगत है, उससे भाग जाओ। कर्म के संबंधों से हट जाओ।

ज्ञानी के लिए कोई कर्म नहीं है, यह बात तो सच है। लेकिन शंकर इसे जो व्याख्या देते हैं, वह ठीक नहीं है, अघूरी है। ज्ञानी के लिए कोई कर्म नहीं है, यह बिल्कुल ही सच है, क्योंकि ज्ञानी के लिए कोई कर्ता नहीं है। लेकिन 'एम्फेसिस' कर्ता के न होने पर होनी चाहिए—अर्जुन से जो कृष्ण कह रहे हैं। शंकर 'एम्फेसिस' को बदलते हैं। वह कर्म पर 'एम्फेसिस' डालते हैं कि कर्म नहीं होना चाहिए। असल में कर्म के दो हिस्से हैं—कर्ता और कर्म। कृष्ण का पूरा जोर इस पर है कि कर्ता न रह जाए। कर्म तो रहेगा ही। परमात्मा भी कर्म के बिना नहीं है, तो या तो कर्मों है, संसारी है, अज्ञानी है। परमात्मा भी कर्म के बिना नहीं है, क्योंकि यह संसार उसका कर्म है, अन्यथा यह संसार कैसे चलता है। यह कैसे चलता है, क्यों चलता है ? इस चलने के पीछे चलने वाली ऊर्जा का हाथ है। तो कर्म के बाहर परमात्मा भी नहीं है, ज्ञानी कैसे होगा ? जोर है कृष्ण का कर्ता न होने पर। लेकिन, संसार को छोड़कर भागने वाला संन्यासी 'एस्केपिस्ट', पलायनवादी, वह कहेगा—कर्म छोड़ो। और तब शंकर को संसार को माया कहने को मजबूर हो जाना पड़ता है। उनको कहना पड़ता है, वह परमात्मा का कर्म नहीं है, सिर्फ हमारा भ्रम। नहीं तो मुश्किल पड़ जाएगी। अगर यह परमात्मा का कर्म है—यह फूलों का खिलना और यह पहाड़ों का बनना और मिटना और यह चाँद-तारों का चलना और ऊगना और डूबना—अगर यह परमात्मा का कर्म है, तब तो परमात्मा भी संन्यस्त नहीं है। तो फिर आदमी से अपेक्षा क्या करनी है ! तो इसलिए

शंकर को और दूसरी भ्रंशट में पड़ना पड़ता है।

असल में तर्क की अपनी भ्रंशटें हैं। एक तर्क आपने पकड़ा, तो उसकी 'कोरलरीज' हैं। फिर आपको उसकी आखिरी सीमा तक जाना पड़ेगा। तर्क बहुत 'टास्क मास्टर' है। एक तर्क आपने पकड़ा तो वह आपको फिर 'लाजिकल कॅनक्लूजन' तक, वह जो तर्क का अंत होगा, वहां तक ले जाएगा। एक बार शंकर ने यह कहा कि कर्म बंधन है, कर्म ही अज्ञान है, और ज्ञानी का कोई कर्म नहीं है, तब फिर बड़ी मुश्किल हो गयी। यह कर्म का विराट जाल ! फिर इसको सपना कहे बिना कोई रास्ता नहीं है। यह भ्रूट है। यह है ही नहीं, यह सिर्फ भास रहा है, यह 'एपीयरेंस' है, यह सिर्फ माया है, यह सिर्फ जादूगरी है, यह ऐसे है जैसे एक जादूगर बीज बोता है और आम का वृक्ष हो जाता है और आम लग जाते हैं—न कहीं कोई बीज है, न कहीं कोई आम है, न कहीं कोई वृक्ष है, एक 'हिप्नोटिक ट्रिक' है—वह सिर्फ भासता है। लेकिन, बड़े मजे की बात है कि 'हिप्नोटिक ट्रिक' देखने वालों के लिए भ्रूट हो, करने वाले के लिए कर्म है। 'हिप्नोटिस्ट' के लिए तो कर्म है ही। 'हिप्नोटिज्म' भी तो करना ही पड़ता है।

शंकर इसलिए जाल में पड़ते जाते हैं। और बड़ी मुश्किल खड़ी होती है कि अब वह क्या करें ? अब वह माया को कैसे समझाएँ ? अगर माया सिर्फ हमारा भ्रम है, हमने पैदा किया है, तो भी कम-से-कम परमात्मा 'अलाविंग' तो होगा ही कि वह हमको 'अलाऊ' करता है। यानी इतना तो कर्म मानना पड़ेगा उसका कि वह हमको आज्ञा देता है कि तुम भ्रम देखो। क्योंकि उसकी इतनी आज्ञा भी न हो, तो हम कैसे देख पाएँगे ! हम भ्रम देख रहे हैं। हो सकता है कि भ्रम भ्रूट हो, लेकिन हमारा देखना तो कर्म होगा ही।

इसलिए शंकर छूट नहीं पाते, चक्कर बढ़ता जाता है। और वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। लेकिन, बड़े तार्किक हैं, और गहरी चेष्टा करते हैं यह समझाने की कि कर्म असत्य है, है नहीं। ज्ञानी के लिए कोई कर्म नहीं है ! बाकी उनका जोर कर्ता के मिटाने पर उतना नहीं पड़ता जितना

कर्म के मिटाने पर पड़ता है। लेकिन क्या मैं यह कह रहा हूँ कि शंकर सत्य को नहीं पहुँच सके? नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। शंकर सत्य को पहुँच गये। क्योंकि जिस दिन कर्म को आप विल्कुल मिटा देंगे, कर्ता बचेगा कैसे? कैसे बचेगा? क्योंकि कर्ता बच ही तब तक सकता है जब तक कर्म का भाव है। तो शंकर का पूरा 'लाजिक' 'एम्सर्ड' है, गलत है, लेकिन शंकर की अनुभूति गलत नहीं है। इस बहुत गलत-सलत रास्ते से वे पहुँच तो गये। ऐसे भटके, इधर-उधर बहुत चक्कर लगाए, मंदिर के आसपास बहुत दौड़े तब मंदिर में प्रवेश किया, लेकिन कर गये। कर गये दूसरे कारण से। क्योंकि कर्म को अगर विल्कुल निषिद्ध किया जा सके, कल्पना में भी, ज्ञान में भी अगर यह माना जा सके कि कर्म है ही नहीं, तो कर्ता बचेगा कहाँ? क्योंकि कर्ता बच सकता है कर्म करने से; इस भाव से कि कर्म है, बच सकता है। तो विल्कुल गलत छोर से यात्रा शुरू की। कृष्ण के छोर से यात्रा शुरू नहीं की।

कृष्ण कह रहे हैं, कर्ता को जाने दो, क्योंकि जब कर्ता चला जाएगा तो कर्म जाएगा। ये दोनों एक ही चीज के छोर हैं। लेकिन मैं शंकर के मुकाबले कृष्ण को चुनने को राजी हूँ। इसलिए राजी हूँ कि शंकर की पूरी व्याख्या 'एस्केपिस्ट' बन जाती है। शंकर भागने वाले बन जाते हैं। और शंकर के भागने वाले को भी उन लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है जो भागने वाले नहीं हैं। अगर यह पूरी पृथ्वी शंकर से राजी हो जाए, तो एक क्षण चल नहीं सकता। एक क्षण चलने का उपाय नहीं रह जाएगा। और इसलिए पूरी पृथ्वी राजी नहीं हो सकती। और शंकर भी कितनी ही चेष्टा करें, कर्म को कितना ही माया कहें, वह माया होकर भी शेष रह जाता है। शंकर भी भीख तो माँगने निकलते ही हैं, भिक्षा तो लेते ही हैं, समझाने तो जाते ही हैं, समझाने की चेष्टा तो करते ही हैं। शंकर के विरोधियों ने शंकर का खूब मजाक लिया है। शंकर के विरोधी कहते हैं, तुम किसको समझाते हो? अगर सब माया है, तो काहे भ्रम में पड़ते हो? तुम यह गाँव-गाँव किस लिए भटकते हो? यह चलना किसलिए? यह

समझाना किसलिए ? किसको समझा रहे हो, जो नहीं है उसको ? कहाँ जा रहे हो, जो नहीं है वहाँ ? कहाँ जा से रहे हो, जो नहीं था वहाँ से ? यह भिक्षा का पात्र, यह भिक्षा का माँगना, यह भूख, यह प्यास, यह किसी का पूरा करना, यह न करना— शंकर कहेंगे, सब माया है।

एक कहानी मुझे याद आती है। एक बौद्ध भिक्षु जो जगत को माया ही मानता, संसार को झूठा ही मानता, वह एक सम्राट के दरबार में गया। उसने बड़े तर्क दिये और सिद्ध कर दिया कि सब झूठ है। तर्क में एक सुविधा है। तर्क यह तो सिद्ध कभी नहीं कर पाता कि सत्य क्या है, लेकिन यह सिद्ध कर सकता है कि झूठ क्या है ? तर्क यह तो कभी नहीं बता पाता है कि क्या है, तर्क यह जरूर बता पाता है कि क्या नहीं है। तलवार की तरह तलवार है—तलवार मार तो सकती है, जिला नहीं पाती। तोड़ तो सकती है, जोड़ नहीं पाती। मिटा तो सकती है, बना नहीं पाती। तो तर्क में एक धार है तलवार जैसी, 'डिस्ट्रिक्टिव' है। तर्क ने कभी भी कुछ 'कन्स्ट्रक्टिव' नहीं किया, कर नहीं सकता।

सम्राट के दरबार में उसने सब सिद्ध कर दिया कि सब झूठ है। लेकिन सम्राट भी अपने ढंग का आदमी है। उसने कहा कि सब होगा झूठ, लेकिन एक चीज नहीं हो सकती है, वह मेरे पास है। उसे मैं बुलाये लेता हूँ। उसके पास एक पागल हाथी है। उसने उस पागल हाथी को बुलवा लिया। महल पर, सड़क खाली कर दी गयी और पागल हाथी छोड़ दिया गया और उस गरीब भिक्षु को छोड़ दिया गया, सम्राट छत पर खड़ा हो गया है। सारा गाँव छतों पर खड़ा है। वह पागल हाथी दौड़ता है, वह भिक्षु भागता है और चिल्लाता है कि मुझे बचाओ ! मैं मरा, मैं मर जाऊँगा, मुझे बचाओ, लेकिन वह हाथी को दौड़ाए चले जाते हैं, वह उसको बिल्कुल पकड़वाते भी नहीं, पूरे गाँव में दौड़वाते हैं। फिर आखिर हाथी उसे पकड़ लेता है सूँड़ में। वह चिल्लाता है, हाथ-पैर जोड़ता है, रोता है, गिड़गिड़ाता है कि मैं मर जाऊँगा, फिर उसे छोड़ा जाता है। फिर सम्राट उसे महल के भीतर बुलाता है, फिर उससे पूछता है कि यह हाथी ? वह

भिक्षु कहता है, सब असत्य है। तुम्हारा रोना ? वह कहता है, आप भ्रम में आ गये, सब असत्य है। वह भिक्षु कहता है, आप भ्रम में आ गये, सब असत्य है। वह हाथी असत्य, वह मेरा होना असत्य, वह मेरा रोना-चिल्लाना असत्य, वह मेरे मन का भय असत्य, वह मेरी प्रार्थना असत्य, वह तुम जिनसे प्रार्थना की गयी असत्य, वह तुमने जो छुड़वाया असत्य, कुछ सत्य नहीं हैं।

अब इसके साथ बड़ी मुश्किल है। इसके साथ बड़ी मुश्किल है। अब वह पागल हाथी भी हार गया, अब कोई मतलब न रहा। क्योंकि यह आदमी यह आदमी, मगर है 'कंसिस्टेंट'। वह यह कहता है कि जब सभी असत्य है, तो मेरा रोना कैसे सत्य हो जाएगा ? वह कह रहा है, सब असत्य है, बचाने की पुकार असत्य है। हाँ, वह यह कह रहा है, जब मैं कह रहा हूँ कि संसार असत्य है, तो तुमने भ्रम समझा ; मेरी बचाने की आवाज भ्रम थी, झूठी थी, माया थी। जो आदमी सारे जगत को माया कहने को राजी है, उसे समझाना बड़ा कठिन है। क्योंकि वह सबको ही कहने को राजी है। शंकर के विरोधी मजाक उड़ाते हैं, लेकिन शंकर को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। शंकर कहते हैं, तुम्हारा यह देखना असत्य है कि मैं समझाने जाता हूँ, कि मैं किसी को समझाता हूँ, कि कोई समझाता है, कि कोई समझाने वाला है। न कोई समझाने वाला है, न कोई समझने वाला है, सब माया है। जिसने यह कहा सब माया है, उसको अब तर्क का कोई उपाय न रहा।

लेकिन, तर्क में यह कितना ही सही हो जाए, हम जीवन को चाहे माया ही नाम दे दें, लेकिन माया भी है। उसके होने को शंकर इनकार नहीं कर सकते। वह है। रात हम सपना देखते हैं, वह झूठ है, लेकिन वह है। उसके 'एक्जिस्टेंस' को, उसके अस्तित्व को इनकार नहीं कर सकते। सपना कितना ही झूठा हो, है। साँप मुझे रस्सी में दिखाई पड़ा हो, लेकिन दिखाई पड़ा है। यह सवाल नहीं है कि वह है या नहीं, लेकिन मेरा दिखाई पड़ना तो कम-से-कम है। न होगा साँप, रस्सी तो है। न होगी रस्सी, मुझे

दिखाई पड़ा, यह तो है । न होगा यह दिखाई पड़ना, जिसे दिखाई पड़ा, वह तो है ।

अस्तित्व को हम अंततः निषिद्ध नहीं कर सकते । वह बच ही जाता है, आखिर, आखिर, आखिर । हाँ, डिकार्ट ठीक कहता है कि हम सब निषेध कर दें, लेकिन आखिर उसको कैसे निषेध करेंगे जो निषेध कर रहा है ? 'वी केन नाट निगेट दि निगेटर' । सब असत्य कर दें, लेकिन शंकर ? शंकर तो हैं । इसलिए शंकर को जो व्याख्या है, वह अधूरी है और एक पहलू की है । वह सिक्के के एक पहलू पर जोर दे रहे हैं, दूसरे पहलू का उनको पता नहीं है । और दूसरे पहलू को इनकार कर रहे हैं, जबकि सिक्के के दोनों पहलू हैं ।

तो शंकर कृष्ण से कम 'कम्प्यूजिंग' है, शंकर कृष्ण से कम भ्रम में डालते हैं । इसलिए शंकर के साथ जो खड़े हैं, वे निभ्रांत खड़े हो गये । इसलिए शंकर हिंदुस्तान में संन्यासियों का बड़ा आत्मविश्वासी वर्ग पैदा कर सके, वह कृष्ण पैदा नहीं कर सके । सच तो यह है कि शंकर का ही एक निभ्रांत संन्यासियों का वर्ग खड़ा हुआ । क्योंकि शंकर एक पहलू की बात करते हैं, बिना इसकी फिक्र किये कि दूसरा पहलू अस्तित्व में है । लेकिन दूसरे पहलू के अस्तित्व की भी अगर बात की जाए, तो उसको समझने के लिए बड़ी गहरी समझ चाहिए । इसलिए शंकर संन्यासियों का एक बड़ा वर्ग भी पैदा कर सके, लेकिन नासमझ संन्यासियों को भी बड़ी संख्या में इकट्ठा कर सके । हिंदुस्तान का संन्यास भी शंकर के साथ पदा हुआ और हिंदुस्तान का संन्यास शंकर के साथ ही मंदबुद्धि भी हुआ है । ये दोनों बातें एक साथ हुई हैं । क्योंकि कृष्ण के साथ खड़े होने के लिए बड़ी मेधा चाहिए, जो 'कम्प्यूज्ड' होती ही नहीं, जो 'कंट्राडिक्शन' से 'कम्प्यूज्ड' होती ही नहीं, जो विरोधों से भ्रम में नहीं पड़ती । हम सब विरोध से भ्रम में पड़ जाएंगे । इसलिए शंकर की कृष्ण की गीता की जो व्याख्या है । वह सर्वाधिक लोकप्रिय हुई है । उसका कारण यह है कि शंकर ने पहली दफे गीता को निभ्रांत कर दिया, उनमें से सब भ्रांतियाँ अलग

कर दीं, साफ-सुथरा कर दिया, सब विरोध छांट डाले, एक सीधी एक रस व्याख्या कर दी। लेकिन मेरा मानना है कि कृष्ण के साथ जितना अन्याय शंकर ने किया उतना किसी और ने नहीं किया। हालांकि यह भी हो सकता है कि अगर शंकर ने टीका न की होती, तो गीता खो गयी होती। यह भी हो सकता है। क्योंकि शंकर की टीका ही के कारण गीता सारे जगत में बची है। मगर यह सब है, ऐसा ही है।

प्रश्न : भगवान श्री, शंकर की माया का अर्थ भूठ न होकर परिवर्तनशीलता नहीं हो सकता ?

अर्थ तो कुछ भी किया जा सकता है। लेकिन शंकर परिवर्तनशीलता को ही भूठ कहते हैं। शंकर कहते ही यह हैं कि वही है असत्य, जो सदा एक-सा नहीं है। वही है मिथ्या, जो कल था कुछ और, आज है कुछ और, कल होगा कुछ और। शंकर की मिथ्या और असत्य की परिभाषा ही परिवर्तन है। शंकर कहते हैं, जो शाश्वत है, सदा है, वही है; वही है, वैसा ही है। जिसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ, जिसमें परिवर्तन हो ही नहीं सकता, वही है सत्य। सत्य की शंकर की परिभाषा शाश्वत है। 'इटरनिटी' है। और संसार की परिभाषा परिवर्तन है, जो बदल रहा है, जो बदलता जा रहा है, जो एक क्षण भी वही नहीं है जो एक क्षण पहले था।

अब इसका मतलब क्या हुआ ? इसका मतलब यह होता है कि जो एक क्षण पहले कुछ और था और एक क्षण बाद कुछ और हो गया—इसका मतलब क्या हुआ—इसका मतलब यह हुआ कि जो एक क्षण पहले था वह भी वह नहीं था, और एक क्षण बाद जो हो गया वह भी वह नहीं है, क्योंकि एक क्षण बाद वह फिर कुछ और हो जाएगा। जो नहीं है, उसी का नाम असत्य है। जो एक क्षण पहले भी वही था, एक क्षण बाद वही है, एक क्षण बाद भी वही होगा, जो है ही वही, वही है सत्य। शंकर सत्य और असत्य को जो परिभाषा करते हैं, उसमें परिवर्तन ही असत्य का पर्याय बन जाता है। और अपरिवर्तन ही सत्य का पर्याय बन जाता है। लेकिन, मैं जो कह रहा हूँ,

या कृष्ण जो कहेंगे, वह यह कहेंगे कि परिवर्तन उतना ही सत्य है, जितना अपरिवर्तन सत्य है। कृष्ण यह कह रहे हैं कि परिवर्तन उतना ही सत्य है, जितना अपरिवर्तन सत्य है। क्योंकि वह जो अपरिवर्तित है, परिवर्तन के बिना नहीं हो सकता। और वह जो परिवर्तित हो रहा है, अपरिवर्तित कीली के बिना नहीं घूम सकता। असल में अपरिवर्तित होने के लिए परिवर्तन जरूरी है। और परिवर्तन के होने के लिए अपरिवर्तित होना जरूरी है।

वह जो 'अनमूर्विग' है, वह है ही इसीलिए कि उसके चारों तरफ 'मूर्विग' है। कृष्ण के साथ—कृष्ण सारे द्वंद्व को आत्मसात करते हैं सब दिशाओं से। वह यह कहते हैं कि गति का आधार अगति है। अगति का होना गति पर है। अगर हम कृष्ण को समझें, तो उसका मतलब यह है कि सत्य होने के लिए भी असत्य अनिवार्यता है। नहीं तो सत्य भी नहीं हो सकेगा। सत्य के होने के लिए असत्य वैसी ही अनिवार्यता है, जैसे प्रकाश के होने के लिए अंधकार अनिवार्यता है, जैसे जीवन के होने के लिए मृत्यु अनिवार्यता है, जैसे स्वास्थ्य के होने के लिए बीमारी अनिवार्यता है। जो विपरीत है वह अनिवार्य है। असल में वे एक ही चीज के दो पहलू हैं, हमारी दिक्कत है कि हम उसको विपरीत मानकर चल पड़ते हैं। वह एक ही चीज के दो पहलू हैं। इसलिए हम पूछते हैं, असत्य आया कहाँ से? यह क्यों नहीं पूछते हैं कि सत्य आया कहाँ से? जब सत्य बिना कहीं से आए आ जाता है, तो असत्य को कौन-सी कठिनाई है? यह बड़े मजे की बात है कि ब्रह्मज्ञान पर चर्चा करने वाले लोग निरंतर पूछते हैं, असत्य आया कहाँ से? और उनमें से एक भी इतनी बुद्धि नहीं लड़ाता कि सत्य आया कहाँ से? और अगर सत्य आ जाता है बिना कहीं से, तो असत्य को क्या बाधा है? बल्कि सच तो यह है कि असत्य को ज्यादा सुविधा है बिना कहीं से आने के, बजाय सत्य के। सत्य को कहीं से आना चाहिए। असत्य को आने की क्या जरूरत है। जो असत्य ही है, वह बिना कहीं से भी आ सकता है! असत्य का मतलब ही है कि जो

नहीं है। उसके आने के लिए क्या मूल स्रोत की जरूरत है ?

नहीं, सत्य और असत्य आए कहीं से, ऐसा सोचना गलत है। सत्य और असत्य युगपत हैं, 'साइमल्टेनियस' हैं। वे एक ही अस्तित्व के दो पहलू हैं। उनके आने-जाने का सवाल नहीं है। जिस दिन तुम्हारा जन्म आया उसी दिन मौत आ गयी, आएगी नहीं। वह जन्म का ही दूसरा पहलू है। लेकिन अभी तुमने एक पहलू देखा, सत्तर साल लग जाएँगे दूसरे को देखने में, यह दूसरी बात है। यह तुम्हारी असमर्थता है कि तुम एकसाथ नहीं देख सके। तुमको सिक्का उलटाने में सत्तर साल लग गये। बाकी जिस दिन जन्म आया, उसी दिन मौत आ गयी। जिस क्षण सत्य आया, उसी क्षण असत्य आ गया। आ गया की भाषा ही गलत है—सत्य है, असत्य है। 'एक्जिस्टेंस' है, 'नॉनएक्जिस्टेंस' अस्तित्व है, अनस्तित्व है।

शंकर ने एक पहलू पर जोर दिया है, इसके साथ एक दूसरा पहलू भी ध्यान में ले लेना जरूरी है।

शंकर ने जोर दिया कि यह जो दिखायी पड़ रहा है यह माया है। यह एक पहलू था। बुद्ध ने इससे ठीक उल्टे पहलू पर जोर दिया जो नागार्जुन में जाकर पूरा हो गया। उसने कहा, जिसको दिखायी पड़ रहा है, वह माया है। तो शंकर की भाषा में संसार भूठ हो गया, नागार्जुन की भाषा में आत्मा भूठ हो गयी। नागार्जुन यह कहता है कि जो दिखायी पड़ रहा है, वह जिसको दिखायी पड़ रहा है, इनमें दोनों में मौलिक आधार वह नहीं है जो दिखायी पड़ रहा है, मौलिक आधार वह है जिसको दिखाई पड़ रहा है, वह भूठ है। और सब भूठ उससे पैदा हो रहे हैं। क्योंकि मैं आँख बंद कर लेता हूँ, संसार दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन मैं सपने पैदा कर लेता हूँ। आँख बंद कर लेता हूँ, संसार नहीं दिखायी पड़ता है, लेकिन मैं आँख बंद करके सपने देखने लगता हूँ। असली बुनियादी भूठ मैं हूँ। अगर संसार भी न हो, तो सपने पैदा करूँगा। मजे की बात है को मैं सपने के भीतर भी सपने पैदा कर लेता हूँ। आपने ऐसे भी सपने देखे होंगे जिसमें आप सपना देख रहे हैं। बहुत 'मिरेकुलस' है यह बात कि एक आदमी सपना देख रहा

है कि वह सपना देख रहा है। जैसे कि जादूगर के डब्बे के भीतर डब्बे होते हैं, ऐसा सपने के भीतर सपने, सपने के भीतर सपने होते हैं। आप ऐसा देख सकते हैं कि मैं एक फिल्म देख रहा हूँ, फिल्म में अपनी ही कहानी देख रहा हूँ, उस कहानी में मैं सो गया हूँ और सपना देख रहा हूँ। डब्बे के भीतर डब्बे डाले जा सकते हैं। इसमें कोई अड़चन नहीं है। तो नागार्जुन कहता है कि संसार को किसलिए झूठ कहने की झंझट में पड़े हो, असली झूठ भीतर बैठा हुआ है। नागार्जुन कहता है, वह भीतर है, वही झूठ है।

असल बात यह है कि जगत में सत्य और असत्य एक-साथ हैं। अगर किसी ने बहुत जोर दिया कि सत्य ही है, तो उसको असत्य को कहीं-न-कहीं दिखाना पड़ेगा कि वह कहाँ है। अगर किसी ने जोर दिया कि असत्य ही है, तो उसको दिखाना पड़ेगा, सत्य कहाँ है। कृष्ण की दुविधा बड़ी गहरी है। और जो लोग दुविधा में नहीं होते, अक्सर उथले होते हैं। दुविधा में होना बड़ी गहरी बात है। सौभाग्य से दुविधा मिलती है। दुविधा का मतलब यह है कि जिंदगी को हमने उसकी पूर्णता में देखना शुरू किया है। न हम यह कहते हैं कि यह असत्य है और वह सत्य है, न हम यह कहते हैं कि सिर्फ सत्य है, न हम यह कहते हैं कि सिर्फ असत्य है, हम देखते हैं और पाते हैं कि सत्य और असत्य किसी एक ही चीज के तालमेल हैं। किसी एक ही चीज के स्वर हैं। किसी एक ही बांसुरी से पैदा हुआ अस्तित्व भी है, अनस्तित्व भी है। और जब कोई आदमी इसको ऐसा पूर्णता में देखता है, तब उसकी कठिनाई हम समझ सकते हैं कि वह जो भी वक्तव्य देगा, वह 'कन्फ्यूजिंग' हो जाएंगे। इसलिए कृष्ण के सभी वक्तव्य 'कन्फ्यूजिंग' है। और बहुत गहरे दर्शन से ही 'कन्फ्यूजिंग' वक्तव्य दिये जा सकते हैं।

प्रश्न : शंकर का माया को अनिर्वचनीय कहना क्या उनका 'कांप्रो-माइज' करना नहीं है ?

शंकर को तो 'कांप्रोमाइज' करनी ही पड़ेगी। जो भी अधूरे सत्य पर जोर देगा, उसको समझौता करना ही पड़ेगा किसी-न-किसी तल पर

जाकर। क्योंकि वह दूसरे को इनकार किया ही नहीं जा सकता, वह है ही। उसको किसी-न-किसी रूप में स्वीकार करना पड़ेगा—कहो कि माया है, कहो कि निवृत्ति सत्य है, कहो कि व्यवहार सत्य है। कुछ नाम दो, लेकिन कहीं-न-कहीं स्वीकार, उसको स्वीकृति देनी पड़ेगी, क्योंकि वह है। शंकर भी ऐसा नहीं कह सकते कि हम माया की बात नहीं करते, क्योंकि जो है ही नहीं उसकी क्या बात करनी। उनको भी तो बात तो करनी ही पड़ेगी। तो शंकर को 'कांप्रोमाइज' करना पड़ेगा ! सिर्फ कृष्ण जैसा आदमी 'कांप्रोमाइजिंग' नहीं होता। उसको 'कांप्रोमाइज' की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि वह दोनों को एक-साथ स्वीकार कर रहा है। वह कह रहा है, दोनों हैं। जो एक को इनकार करेगा उसको किसी-न-किसी गहरे तल पर समझौता बनाना पड़ेगा उस दूसरे से, जिसको उसने इनकार किया है। जो दोनों को स्वीकार करता है, उसको अब समझौते का कोई कारण न रहा। समझौते की कोई जरूरत न रही। ऐसा कहें कि समझौता पहले से ही है।

प्रश्न : भगवान श्री, दुविधा को आपने शुभ कहा। पहले आपने अनिर्णायक स्थिति के विपरीत व किसी-न-किसी पक्ष में होने की अनिवार्यता पर जोर दिया है। कृपया स्पष्ट करें।

मैंने कहा कि दुविधा सौभाग्य है। इसका मतलब यह नहीं है कि दुविधा में रहना सौभाग्य है। इसका मतलब है कि जिनको दुविधा पैदा होती है, फिर वह दुविधा के पार जाने की चेष्टा में लग जाते हैं। जिनको होती नहीं पैदा, वह वहीं खड़े रह जाते हैं, वह कहीं जाते नहीं।

तो दुविधा संक्रमण है। दुविधा यात्रा का बिंदु है। दुविधा पैदा होगी तो दुविधा के पार होना पड़ेगा। यह पार होना दो तरह से हो सकता है। या तो किसी पक्ष में हो जाएँ नीचे गिर कर, तो दुविधा मिट जाएगी। शंकर से राजी हो जाएँ, नागार्जुन से राजी हो जाएँ, दुविधा मिट जाएगी। और जो उनसे राजी होते हैं, इसीलिए राजी होते हैं कि दुविधा मिट जाती

हैं। भ्रंश के वह बाहर हो जाते हैं। लेकिन दुविधा वह खोते हैं बुद्धि को खोकर। जिसके पास बुद्धि नहीं है, उसको दुविधा होती ही नहीं। बुद्धि खो दें, दुविधा मिट जाती है। लेकिन मैं मानता हूँ यह कि दुविधा को मिटाना महंगा हुआ, दुर्भाग्य हुआ। दुविधा मिटनी चाहिए बुद्धि के और अतिक्रमण से, और ऐसे बिंदु पर पहुँच कर मिटनी चाहिए कि जहाँ से दोनों एक मालूम पड़ने लगें और दुविधा न रह जाए।

दो में से एक का चुनाव—एक रह जाएगा, आप दुविधा के नीचे गिर जाएंगे। यह अगर ठीक से कहें, तो यह 'इर्रेशनल' हालत होगी। यह 'एब्सर्ड' हालत होगी, बुद्धि से नीचे गिर गये आप। दुविधा तो मिट गयी। पागल इसी तरह अपनी दुविधा मिटाते हैं। बुद्धि छोड़ देते हैं, फिर दुविधा मिट जाती है। 'ट्रांसरेशनल' स्थिति भी है। 'इर्रेशनल विलो रीजन' है, 'ट्रांसरेशनल अब्वेव रीजन' है। बुद्धि के पार जाकर भी दुविधा मिटती है, लेकिन वहाँ दोनों एक दिखायी पड़ते हैं, इसलिए मिटती है। वहाँ विरोध खो जाता है—एक के बचने से नहीं, दो के मिट जाने से, एक ही रह जाने से। इसलिए मैं कहता हूँ, दुविधा सौभाग्य है। वह अबुद्धि से बुद्धि में ले जाती है। और सौभाग्य इसलिए है कि उससे बुद्धि के पार बुद्धि-अतीत का द्वार खुलता है।

प्रश्न : भगवान श्री, आपने कहा कि शंकर की व्याख्या अधूरी है। गीता पर लगभग चालीस-पचास व्याख्याएँ हैं। क्या कोई व्याख्या पूरी भी है? लोकमान्य तिलक की व्याख्या को क्या आप पूरी कहेंगे? वह 'एस्के-पिस्ट' तो नहीं है, 'एक्विविस्ट' है और 'मॉरलिस्ट' भी है। आप उनके 'एक्विविजन' को और शंकर के 'सुपरामॉरलिज्म' को, दोनों को एक-साथ मिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं क्या?

कृष्ण पर कोई टीका पूरी नहीं है। हो नहीं सकती। जब तक कि कृष्ण जैसा व्यक्ति ही टीका न करे।

कृष्ण पर कोई टीका पूरी नहीं है। सब पहलू हैं। और कृष्ण अनन्त

पहलू हैं। उनमें से जिसको जो प्रीतिकर है, चुन लेता है। शंकर उसी गीता में संन्यास सिद्ध कर देते हैं, अकर्म सिद्ध कर देते हैं। उसी गीता में तिलक कर्म सिद्ध कर देते हैं, कर्मयोग सिद्ध कर देते हैं। शंकर से ठीक उल्टा पहलू तिलक चुन लेते हैं। शंकर के पहलू को चुने हुए हजार साल हो गये थे। और हजार साल में शंकर के पलायनवादी पहलू ने हिंदुस्तान की जड़ों को बहुत तरह से कमजोर किया। भगोड़ापन कमजोर करेगा। हिंदुस्तान में जो भी सक्रिय होने की क्षमता थी, उस सबको क्षीण किया। हजार साल के अनुभव ने 'पेंडुलम' को घुमा दिया। जरूरी हो गयी कि गीता की कोई व्याख्या हो जो कर्म को प्रश्रय दे और कहे जोर से कि गीता कर्म के लिए ही कहती है। ठीक दूसरे 'एक्स्ट्रीम' पर तिलक ने वक्तव्य दिया। एक पहलू चुना था शंकर ने, अकर्म का—कर्म छोड़ने वाले अकर्म का; तिलक ने दूसरा पहलू चुना कर्म में डूबने वाले का। तो कर्म की व्याख्या तिलक ने की, वह भी उतनी ही अघूरी है।

बहुत-सी व्याख्याएँ हैं कृष्ण पर, अंदाजन पचास नहीं हजार, और रोज बढ़ती जाती हैं। लेकिन कोई टीका गीता के साथ न्याय नहीं कर पाती। उसका कारण है कि कोई टीकाकार 'ट्रांसरेशनल' होने की हिम्मत नहीं कर पाता। असल में टीकाकार सदा 'रेशनल' ही होता है। तर्क से पार अगर वे जाएँ, तो गीता निर्मित हो जाएगी, टीका निर्मित नहीं होगी। तब गीता बन जाएगी। तब टीका की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। टीका का मतलब ही यह होता है कि जो हमें समझ में नहीं पड़ता, उसे हम समझाने योग्य टिप्पणी दे रहे हैं। टीका का मतलब ही यह होता है, 'कमेंट्री' का मतलब ही यह होता है कि जो गीता में आपको समझ में नहीं आता, वह मैं समझाता हूँ। तो मैं उसकी एक व्याख्या करूँगा। और जब समझाने के लिए ही व्याख्या करूँगा, तो वह तर्क के पार नहीं जा सकती। तर्क के पार अगर कोई भी बात जाएगी तो वह स्वयं गीता बन जाएगी, वह 'कमेंट्री' नहीं रह जाएगी।

प्रश्न : आप अभी कह रहे हैं, वह क्या है ?

एक बात पक्की है कि वह 'कमेंट्री' नहीं है, वह टीका नहीं है ।

प्रश्न : और दूसरी बात ?

दूसरी बात तुम पर छोड़ता हूँ । क्योंकि कुछ तुम पर भी छोड़ा जाना चाहिए न !

प्रश्न : भगवान श्री, मेरे पूर्व प्रश्न का एक अंश बाकी रहा लेने से । वह यह कि शंकर का 'सुपरामॉरलिज्म' और तिलक का 'एकटीविज्म', दोनों को मिलाने से क्या आप मानते हैं कि गीता पूरी हो जाएगी ? क्योंकि जिस अति-नैतिकता की बात आप करते हैं उसकी बात शंकर करते हैं, तिलक नहीं । तिलक घोर नैतिकवादी हैं । और जिस प्रवृत्ति की बात आप करते हैं, उसकी बात तिलक करते हैं, शंकर नहीं, वह निवृत्तिमार्गी हैं ।

यह बात सच है । शंकर अति-नैतिकवादी हैं, 'सुपरामॉरलिस्ट' । क्योंकि नीतिवादी कर्मवादी होगा । नैतिक धारणा कहेगी, यह करो और यह मत करो । शंकर कहते हैं, सभी कर्म माया है । तो तुम चोरी करो कि साधुता करो, सब कर्म माया है । रात में सपना देखूँ कि डाकू हो गया, कि रात में सपना देखूँ कि साधु हो गया, सुबह उठकर कहता हूँ, दोनों सपने थे : दोनों एक-से बेकार हो गये । इसलिए शंकर के लिए कोई नीति नहीं है, कोई अनैति नही है—हो नहीं सकती । चुनाव का कोई उपाय नहीं है । दो सपने में कोई चुनाव होता है ? चुनाव तो तभी हो सकता है जब हम दो यथार्थों में चुनाव करते हों ।

तो चूँकि जगत माया है, इसलिए शंकर के विचार में नैतिकता की कोई जगह नहीं है । शंकर की दृष्टि अति-नैतिक है । वह नैतिकता के पार चली जाती है । अकर्म नैतिकता के पार जाएगा ही । इसलिए जब शंकर की टीका के पहली दफा पश्चिम में अनुवाद हुए, तो लोगों ने उसे 'इम्मारल' ही समझा । उसे समझा कि यह तो बड़ी अनैतिक दृष्टि है । क्योंकि अगर कुछ ठीक नहीं, कुछ गलत नहीं, सभी कर्म एक-सा है और सभी

स्वप्न एक-से हैं, तब तो आदमी भटक जाएगा। तब तो आदमी पतित हो जाएगा। तब तो आदमी का क्या होगा? तो पश्चिम में, जो कि हिब्रू विचार पर खड़े हुए लोग हैं, जहाँ कि सारा धर्म 'डू दिस एंड डू नाट डू दिस', इस पर खड़ा हुआ है, जहाँ 'टेन कमांटमेंट्स' के आधार पर सारी संस्कृति खड़ी हुई है, जहाँ धर्म का मतलब है साफ-साफ बताना कि क्या करो और क्या न करो, उनके लिए अगर शंकर की बात अनैतिक मालूम पड़े तो कठिन नहीं है। लेकिन, शंकर की बात अनैतिक नहीं है। क्योंकि अनैतिक का मतलब होता है, नीति के विपरीत चुनाव। शंकर की बात अचुनाव की है, 'चवॉइसलेस' है। इसलिए अति-नैतिक है। वह यह भी नहीं कहते कि तुम अनैतिक हो जाओ, वह यह नहीं कहते कि तुम चोर हो जाओ। वह यह नहीं कहते कि तुम होने को चुनो, यही कहते हैं कि गलती है तुम्हारी। तुम कुछ होने को ही मत चुनो। तुम न-होने में हो जाओ। यह अति-नैतिक, 'ट्रांसमॉरल' दृष्टि है।

तिलक की दृष्टि नैतिक दृष्टि है, 'मॉरल' दृष्टि है। वे कहते हैं, कर्म में चुनाव है। शुभ कर्म है, अशुभ कर्म है। करने योग्य कर्म हैं, न करने योग्य कर्म हैं। वांछनीय है, अवांछनीय है। और मनुष्य का धर्म 'आंट', 'चाहिए' के आसपास निर्मित है। तो तिलक तो कर्मवादी हैं। इसलिए वह जगत को अयथार्थ नहीं कहते, यथार्थ कहते हैं। और यह जो दिखायी पड़ रहा है, यह माया नहीं है, सत्य है। और इस सत्य के बीच हम जो हैं, निर्णायक हैं, और ठीक और गलत का प्रतिपल चुनाव है। और धर्म का अर्थ ही यही है कि प्रतिपल हम उसको चुनें जो शुभ है। तो तिलक तो ठीक विपरीत व्याख्या में हैं।

प्रश्न यह पूछा गया है कि क्या इन दोनों के मिला देने से पूरी बात हो जाएगी? नहीं। नहीं होगी पूरी बात। उसके कई कारण हैं।

पहला जो सबसे बुनियादी कारण है वह यह है कि अगर हम एक आदमी के हाथ-पैर और हड्डियाँ सब अलग कर लें और फिर मिलाकर

रख दें, तो क्या आदमी पूरा हो जाएगा ? नहीं, पूरा नहीं होगा । आदमी पूरा हो तो हड्डियाँ इकट्ठे में काम करती हैं, हड्डियों को जोड़कर आदमी को पूरा करें, तो पूरा आदमी नहीं आता । 'पार्ट्स' को इकट्ठा करने से 'होल' पैदा नहीं होता । अंश को जोड़ने से पूर्ण नहीं बनता । जोड़ कभी पूर्ण पर नहीं ले जाता । हाँ, पूर्ण में अंश जुड़े होते हैं, यह बिल्कुल दूसरी बात है ।

तो जो मैं कह रहा हूँ, उसमें तिलक और शंकर समाहित हो जाएँगे । लेकिन तिलक और शंकर को जोड़ने से कृष्ण की पूरी दृष्टि नहीं समझी जा सकती । और भी एक कारण है कि तिलक और शंकर सिर्फ दो दृष्टियाँ हैं । कृष्ण के बावत और हजार दृष्टियाँ भी हैं । लेकिन उन सबको जोड़ने से भी कृष्ण नहीं बनेंगे । जोड़ हमेशा 'मेकेनिकल' होगा, 'आर्गनिक' नहीं हो पाता । तो एक मशीन को तो हम जोड़कर पूरा बना सकते हैं, लेकिन एक व्यक्तित्व को, जीवंत व्यक्तित्व को हम जोड़कर कभी पूरा नहीं बना सकते । यह बड़े मजे की बात है । यह मजे की बात है, 'मेकेनिकल' जोड़ में और 'आर्गनिक' जोड़ में, मृत जोड़ में और जीवंत जोड़ में एक बुनियादी फर्क है, जो ख्याल में लेना चाहिए ।

मृत जोड़ अपने अंशों का पूरा जोड़ होता है । जीवंत जोड़ अपने अंशों से थोड़ा ज्यादा होता है । जीवंत जोड़ का मतलब है, जैसे आप हैं, अगर आपके शरीर के हम सारे अंगों का हिसाब-किताब कर लें कि कितना लोहा है आपके भीतर, कितना ताँबा है आपके भीतर, कितना 'अल्यूमीनियम' है आपके भीतर, कितना नमक है, कितना पानी है, कितना 'फॉस्फोरस' है, कितना क्या है वह हम सब जोड़कर निकाल लें, तो एक आदमी के भीतर मुश्किल से तीन-चार रुपये का सामान होता है । इससे ज्यादा नहीं होता । ज्यादा हिस्सा, कोई नब्बे हिस्सा तो पानी ही होता है । जिसका दाम लगाना फिलहाल ठीक नहीं । बाकी जो 'अल्यूमीनियम', 'फॉस्फोरस', लोहा इत्यादि सब होता है मिला-जुला कर, वह कोई तीन

और चार रुपये, पाँच और चार रुपये के बीच होता है। यह सारा अगर हम एक कागज पर रख लें—सब—और इसको जोड़ दें, तो जोड़ तो हो जाएगा—लेकिन आप उसमें बिल्कुल नहीं होंगे, आप भर नहीं होंगे और सब होगा। क्योंकि आप एक जीवंत व्यक्ति थे, जो इस जोड़ से ज्यादा थे। इस जोड़ के भीतर थे, लेकिन जोड़ ही नहीं थे। इस जोड़ के भीतर मौजूद थे, लेकिन जोड़ ही नहीं थे। यह जोड़ पूरा हो जाएगा और आप नहीं होंगे।

कृष्ण का जो जीवन-दर्शन है, वह एक 'आर्गनिक यूनिटी' है। उससे हजार पहलुओं पर टीकाएँ हुई हैं। उस पर रामानुज कुछ और कहते हैं, शंकर कुछ और कहते, निंबार्क कुछ और कहते, बल्लभ कुछ और कहते, तिलक कुछ और कहते, गांधी कुछ और कहते, विनोबा कुछ और कहते, अरविंद कुछ और कहते। ये हजारों कुछ-कुछ कहने वाले लोगों को अगर हम सबको इकट्ठा करके रख लें, तो भी वह 'आर्गनिक यूनिटी' पैदा नहीं होती है जो कृष्ण हैं। हाँ, सब इकट्ठा हो जाएगा, कृष्ण उसमें नहीं होंगे। हाँ, इससे उल्टी बात जरूर सच है। अगर कृष्ण हों, तो यह सब उसमें होगा। लेकिन इससे कुछ ज्यादा भी होगा। इसलिए शंकर और तिलक के जोड़ने से तो कुछ मामला नहीं बढ़ा, अगर हम समस्त व्याख्याकारों को, समस्त टीकाकारों को जोड़ लें, तो भी वह पूर्ण से कम होगा और मृत होगा। वह जीवंत नहीं हो सकता। वह जोड़ ही होगा। वह गणित का जोड़ ही होगा। वह 'आर्गनिक टोटलिटी' नहीं हो सकती।

इसलिए मैं जो कह रहा हूँ, वह कृष्ण की कोई व्याख्या नहीं है। मैं कोई उनकी व्याख्या नहीं कर रहा। मुझे उनकी व्याख्या से प्रयोजन ही नहीं है। इसलिए मैं जरा भी चिंतित और भयभीत नहीं हूँ कि मेरे वक्तव्यों में विरोध हो जाएगा। होगा ही। क्योंकि वह कृष्ण में है, उसका मैं कुछ कर नहीं सकता। मैं कृष्ण की व्याख्या नहीं कर रहा, कृष्ण को सिर्फ आपके सामने खोल रहा हूँ। मैं अपने को उनपर थोपने का नहीं कोई उपाय कर

रहा, सिर्फ़ उनको खोल रहा हूँ। वह जैसे हैं—गलत हैं, सही हैं; अनुचित हैं, उचित हैं; 'एब्सर्ड' हैं, 'इर्रेशनल' हैं, 'सुपरारेशनल' हैं, जैसे हैं; नैतिक हैं, अनैतिक हैं, जैसे हैं; मुझे उनमें कोई चुनाव नहीं है। जैसे कृष्ण को जीवन में कोई चुनाव नहीं है, ऐसा मैं उनमें कोई चुनाव नहीं कर रहा, उनको बस खोले जा रहा हूँ। इसमें मैं बहुत कठिनाई में पड़ूंगा ही। इसलिए कठिनाई में पड़ूंगा, जैसे कि कृष्ण की गीता से हजारों साल कठिनाई में पड़े हैं, तो मैं जो भी कहूंगा, वह फिर टीका योग्य होगा; वह टीका योग्य होगा और आप सब उसकी टीका करते हुए लौटेंगे कि मेरा क्या मतलब था ? क्योंकि मैं तो सीधा पूरा ही खोले दे रहा हूँ। उसमें मैं कोई यह फर्क कर ही नहीं रहा कि यह कहने से कृष्ण की दूसरी बात कहने में क्या कठिनाई होगी, इसका हिसाब ही नहीं रख रहा हूँ। दूसरी बात जब होगी तब दूसरी कह दूंगा, तीसरी जब होगी तब तीसरी कह दूंगा। उनको खोलता चला जाऊंगा, वह जैसे हैं पूरे आपके सामने खुल जाएँ। तो जो मैं कह रहा हूँ, इसीलिए मैंने कहा, वह व्याख्या नहीं है, वह 'कमेंट्री' नहीं है।

प्रश्न : तो फिर आप कृष्ण होकर ही बात कर रहे हैं ?

होने की जरूरत तब पड़ती है जब कोई न हो। होने की क्या जरूरत है ? कोई होने की जरूरत ही नहीं है किसी को। हैं ही।

प्रश्न : भगवान श्री, श्री अरविंद ने जो टीका श्रीमद्भगवद्गीता पर लिखी है, अभी आपने उनका नाम लिया तो ख्याल आया कि आप सृष्टि-दृष्टिवाद, जिसमें सृष्टि पर भार है और दृष्टि-सृष्टिवाद, जिसमें दृष्टि पर भार है—उन दोनों के करीब आ गये। तकलीफ यह है कि अरविंद 'सुपरामेंटल' की जब बात करते हैं कि प्रभु की चेतना नीचे उतरेगी, तब एक 'डुअलिज्म' आ जाता है। वह आ जाता है या नहीं ? और रमण महर्षि का अजातवाद चैतन्य महाप्रभु के अचित्य भेदाभेदवाद के पास और आपके पास भी आता है कि नहीं ? और अरविंद का कृष्णदर्शन का वह प्रसंग क्या था ?

अरविंद 'सुपरामेंटल' की बात करते हैं। अति-चेतन, अति-मनस की बात करते हैं। लेकिन, बात है 'रेशनल'। अरविंद बुद्धि से पार कभी नहीं जाते। वे अगर बुद्धि के अतीत की बात भी करते हैं, तो बुद्धिगत धारणाओं में ही करते हैं। अरविंद निपट बुद्धिवादी हैं। वे जो बात करते हैं, जिन शब्दों, जिन धारणाओं की चर्चा करते हैं, वे सब धारणाएँ अरविंद के बुद्धिवाद की धारणाएँ हैं। अरविंद के पूरे वक्तव्यों में बड़ी संगति है, जो 'सुपरारेशनल' के वक्तव्यों में कभी नहीं होती। बड़ी 'कंसिस्टेंसी' है। बड़ा गणित है, बड़ा तर्क है, जो 'मिस्टिक' के शब्दों में नहीं होता। हो नहीं सकता। 'मिस्टिक' के, रहस्यवादी के शब्द में तो एक शब्द के बाद जो दूसरा शब्द होता है, वह पहले का खंडन कर जाता है। अरविंद कहीं अपना खंडन नहीं करते।

अरविंद एक सुव्यवस्थित 'सिस्टम मेकर' हैं। 'सिस्टम मेकर' कभी भी 'सुपरारेशनल' नहीं होता। हो नहीं सकता है। 'सिस्टम' बनाना हो तो 'रीज़न' से बनती है। और जो 'सुपरारेशनल' होते हैं, सदा गैर-'सिस्टेमेटिक' होते हैं। उनकी कोई 'सिस्टम' नहीं होती। 'सिस्टम' हो ही नहीं सकती। व्यवस्था होगी कैसे अतर्क्य में? अर्चित्य में व्यवस्था होगी कैसे? इसलिए इस सदी में जितने लोग 'रीज़न' के थोड़े पार गये हैं, वे सब 'फ्रेगमेंटरी' हैं, 'सिस्टेमेटिक' नहीं हैं। चाहे विटर्गिस्टीन हो, चाहे हुसरर हो, चाहे हाइडिगर हो, मारलुपांटी हो—कोई भी हों, ये सारे-के-सारे लोग 'फ्रेगमेंटरी' हैं। कृष्णमूर्ति हों, ये सब 'फ्रेगमेंटरी' हैं। इनकी कोई 'सिस्टम' नहीं है। इनकी कोई 'सिस्टम' नहीं है। ये कोई व्यवस्था नहीं बनाते। इनके वक्तव्य 'एटॉमिक' हैं, आणविक हैं। और एक वक्तव्य दूसरे वक्तव्य का खंडन कर सकता है, करता है।

अरविंद का मामला बहुत भिन्न है। सच तो यह है कि शंकर के बाद हिंदुस्तान में अरविंद के मुकाबले बड़ा 'सिस्टम मेकर' नहीं हुआ। इतना बड़ा व्यवस्थापक नहीं हुआ है। लेकिन यही उनकी कमजोरी और गरीबी

हे। यही उनकी दीनता है। क्योंकि वह शब्द और तर्क और सिद्धांत के बड़े माहिर, कुशल खिलाड़ी हैं। लेकिन जिदगी का असली सत्य इन सबसे पार है। तो वह सब विभाजन करके रख देते हैं। असल में अरविंद की शिक्षा पश्चिम में हुई—सारी शिक्षा। सीख कर लौटे वे तर्क और गणित। सीख कर लौटे वे पश्चिम के सोचने की अरिस्टॉटेलियन पद्धति। सीख कर लौटे वे डार्विन का विकासवाद। सीख कर लौटे वे विज्ञान की तर्क-चित्तन व्यवस्था। सारा मानस उनका पाश्चात्य है। हिंदुस्तान में अरविंद से ज्यादा पाश्चात्य मानस का व्यक्ति नहीं था इस सदी में। फिर पूरब की उन्होंने की व्याख्या, सो जो होना था वह हुआ। पूरब के पास हैं। कोई तर्क-व्यवस्था नहीं है। पूरब की गहनतम अनुभूतियां अतर्क्य पूरब के अनुभव अर्चित्य हैं। पूरब के अनुभव अज्ञात, अनजान के, ज्ञान के अतीत के हैं, जानने वाले के पार के हैं। पूरब का अनुभव रहस्य का है, 'मिस्ट्री' का है। फिर अरविंद पश्चिम का मानस लेकर और पूरब की अनुभूतियों की व्याख्या करने बैठे, सो एक अच्छी व्यवस्था बनी जो कि पूरब का कोई आदमी न बना सकता था। तो उन्होंने सारी बातें की अर्चित्य की की, और सारे साधन उपयोग किये चित्त के।

लेकिन वे बातें बातें ही हैं, इसीलिए वे चित्त के माध्यम से कर सके। अगर अनुभव भी अरविंद का अर्चित्य का हो, तो तब 'कैंटेग्रीज' टूट जातीं, वे 'कैंटेग्रीज' में नहीं जी सकते थे। कहीं 'कैंटेग्रीज' नहीं टूटतीं। यानी मजे की बात यह है कि वे उन चीजों के लिए भी धारणाएँ बनाते हैं जिनके लिए कभी धारणाएँ नहीं बनायी गयी थीं। जैसे 'सुपरामेंटल'। वह बनाते जाते हैं धारणाएँ, वह खंड करते जाते हैं, वह ठीक गणित बिठाये चले जाते हैं, वह सारी बात कर देते हैं।

दूसरी बात जो पूछी है, वह भी इस संबंध में ख्याल लेने जैसी है।

धर्मों का, समस्त धर्मों का चित्तन एक अर्थ में गैर-विकासवादी है, 'नॉन इवालूशनरी' है। समस्त धर्म दो हिस्सों में बँटे रहे हैं। एक हिस्सा

है, जो 'क्रिएशन' में मानता है, सृष्टि में मानता है। जैसे ईसाई हैं, मुसलमान हैं, हिंदू हैं, सब सृष्टि में मानते हैं। यह मानते हैं, परमात्मा ने सृष्टि की। और जो लोग सृष्टि में मानते हैं, वे गहरे में विकास में नहीं मान सकते। क्योंकि विकास में मानने का यह मतलब होगा कि परमात्मा ने जब पहले बनायी प्रकृति को, सृष्टि को, तो वह अपूर्ण थी, और फिर धीरे-धीरे उसमें विकास हुआ। पूर्ण परमात्मा अपूर्ण को नहीं बना सकता है। इसलिए सृष्टिवादी विकासवादी नहीं हो पाता। विकास का मतलब है, रोज विकास हो रहा है। सृष्टि का मतलब है, एक क्षण में पूरा-का-पूरा सृजन किया गया है, विकास नहीं हो रहा। जो ऐसा नहीं मानते थे, जैसे जैन या बौद्ध, तो उन्होंने माना कि सृष्टि हुई ही नहीं है। जो है वह अनादि है, उसका कभी सृजन नहीं हुआ। सृजन हुआ ही नहीं।

इसलिए बड़े मजे की बात है, सृष्टि हिन्दुओं का शब्द है, प्रकृति जैनों, बौद्धों, सांख्यों का शब्द है। अब सब घोल-मेल हो गया धीरे-धीरे। प्रकृति शब्द हिन्दुओं का नहीं है, क्योंकि हिन्दू प्रकृति कह ही नहीं सकते। प्रकृति का मतलब है, जो बनाने के पहले से मौजूद है, 'प्रोक्रिएशन' जो बनाने के पहले से भी मौजूद है। जो सदा मौजूद ही है, जिसको कभी बनाया ही नहीं गया। सृष्टि का मतलब है, जो कभी मौजूद नहीं थी और कभी बनायी गयी। इसलिए प्रकृति शब्द बड़े और लोगों का है। वह उनका है जो 'क्रिएशन' में मानते ही नहीं। और सृष्टि उनका है, जो मानते हैं किसी क्षण में सृष्टि बनायी गयी। इसलिए सांख्य, जैन या बौद्ध चूंकि सृष्टि को नहीं मानते, इसलिए उनके पास सृष्टि की कोई धारणा नहीं है। जब बनाया ही नहीं गया, तो बनाने वाले का कोई सवाल नहीं है। इसलिए ईश्वर खो गया वहाँ। उसकी कोई जगह वहाँ नहीं रही। क्योंकि ईश्वर को बनाने वाले की तरह हमें जरूरत पड़ी थी। और जिन्होंने माना बनाया ही नहीं गया, बात खतम हो गयी। जिन्होंने सृष्टि मानी, उनके पास स्रष्टा है।

अरविन्द पश्चिम से धारणा लेकर आए 'एवोलूशन' की। अरविन्द की जब शिक्षा हुई तब डार्विन छाया हुआ था यूरोप पर। वह धारणा लेकर आए विकास की। यहाँ आकर पूर्वी मनस् का जब उन्होंने अध्ययन किया और पूर्वी अनुभूतियों को जब उन्होंने—अध्ययन किया मैं कहता हूँ, जाना नहीं। अध्ययन उनका गहन है। ज्ञान उनका इतना गहन नहीं है। मनन और चिंतन, उनकी बड़ी तीव्र मेधा है; लेकिन अनुभूति उनकी बहुत क्षीण है। तो जब उन्होंने पूरव का पूरा अध्ययन किया और पश्चिम के मनस् और डार्विन के ख्याल को लेकर वे आए, तो जिसको हम कहते हैं 'क्रॉस ब्रीडिंग', अरविन्द में 'क्रॉस ब्रीडिंग' हो गयी। वर्णसंकर एक विचार पैदा हुआ। वह वर्णसंकर विचार में विकास का सिद्धांत भारत के मनस् में जुड़ गया। अब बड़ी तकलीफ हुई। क्योंकि भारत का मनस् प्रकृति की, पदार्थ की चिंतना ही नहीं करता, वह चिंतना करता है चित्त की, मनस् की, आत्मा की। और पश्चिम से विकास का सिद्धांत लेकर वह आए और भारत के मनस् की 'साइकिक' चिंतना का दोनों का जोड़ हो गया, तो 'साइकिल एवोलूशन' का ख्याल अरविन्द को पैदा हो गया, कि एक मनस् का विकास हो रहा है।

इस विकास में एक नयी बात उन्होंने जोड़ी, जो बिल्कुल उनकी थी और बिल्कुल नयी है और इसी कारण बिल्कुल गलत है। मौलिक बातें अक्सर गलत हो जाती हैं—अक्सर। क्योंकि एक ही व्यक्ति उनको खोजता है। परंपरागत बातें सड़ जाती हैं, जड़ हो जाती हैं, लेकिन अक्सर गलत नहीं होतीं। क्योंकि करोड़ों लोग उन्हें खोजते हैं। अरविन्द का नवीनतम जो ख्याल है, जिसकी वजह से उनकी प्रतिष्ठा हुई, वह है—परमात्म-चेतना का अवतरण।

सदा ऐसा ही सोचा गया है कि व्यक्ति उठेगा ऊपर और परमात्मा से मिलेगा। एक ऊर्ध्वगमन होगा। अरविन्द कहते हैं, परमात्मा उतरेगा और व्यक्ति से मिलेगा। एक तरह से सोचने पर ये भी एक सिक्के के दो पहलू

हैं। असल में, सत्य बहुत बीच में है। और वह सत्य यह है कि मिलन वहाँ होता है, जहाँ हम भी कुछ चले होते हैं और परमात्मा भी कुछ चला होता है। मिलन तो वहीं होता है। हम भी होते हैं, वह भी चला होता है। लेकिन पुरानी धारणा हमारे चलने पर जोर देती थी। उसका कारण था। क्योंकि परमात्मा का चलना तो सुनिश्चित है, हमारा चलना ही सुनिश्चित नहीं है। वह तो चलेगा ही, इसलिए उसको छोड़ा जा सकता है, हिसाब के बाहर रखा जा सकता है। हमारे चलने भर की बात है। हम अपने चार कदम उठा लें, उसके चार कदम उठने ही वाले हैं। इसलिए उसको छोड़ दिया था, ख्याल के बाहर रखा था। क्योंकि उसके चलने पर जोर देने का परिणाम कहीं हमारे चलने की कमजोरी न बन जाए।

अरविन्द ने दूसरे पहलू से पकड़ा और कहना शुरू किया कि परमात्मा उतरेगा। इसका प्रभाव पड़ा, क्योंकि जो चलने के लिए बिल्कुल उत्सुक नहीं थे, उन्होंने कहा यह बड़ी हृदय की बात है। यह लगती है, जँचती है। इसलिए हिन्दुस्तान में अरविन्द की तरफ जितने लोग दौड़े पिछले वर्षों में, उतना किसी की तरफ नहीं दौड़े। उसका कुल कारण इतना था कि जो भी और गहरे अर्थों में नहीं दौड़ सकते थे, वह पांडिचेरी की तरफ दौड़ने लगे। उन्हें लगा की यह सस्ता मामला है। पांडिचेरी तो पहुँचा जा सकता है, और उसके बाद परमात्मा उतरेगा, उसके बाद हमें कुछ...परमात्मा के उतरने की बात सच है, लेकिन हमारे चढ़े बिना वह कभी नहीं उतरता। और इसमें एक दूसरी बात ध्यान रखने की है कि चढ़ने के मामले में, मैं चढ़ूँगा तो मुझ पर उतरेगा, आप चढ़ेंगे तो आप पर उतरेगा, लेकिन उतरने के मामले में कैसे तय होगा कि किस पर उतरे? सब पर उतर जाएगा। क्योंकि परमात्मा तो सब पर उतर जाएगा। फिर कोई हिसाब करेगा, चुनाव करेगा कि इस पर उतरूँ, इस पर न उतरूँ !

तो पांडिचेरी में एक ख्याल पैदा हुआ कि अरविन्द कोशिश करेंगे

और सब पर उतर जाएगा। यह ख्याल पैदा हुआ, जो कि लोभ बना— जो अभी भी लोभ जारी है। ख्याल यह हुआ कि जब एक पर उतर आएगा, जैसे कि गंगा उतरी भगीरथ पर। तो फिर भगीरथ पर थोड़े ही उतरी, उतर गयी सबके लिए, वह गयी। तो भगीरथ का काम अरविन्द कर देंगे। और एक दफा परमात्मा उतर गया, तो फिर सब पानी पिएँगे। फिर गंगा के किनारे सब बस जाएँगे।

इस भ्रम ने बड़ा उपद्रव पैदा किया। और मैं मानता हूँ, यह बड़ी गलत धारणा है। व्यक्ति को जाना पड़ता है। घटना उतरने की घटती है, लेकिन व्यक्ति को तैयारी करनी पड़ती है। और सामूहिक रूप से कभी परमात्मा उतरेगा, ऐसा मुझे कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। क्योंकि परमात्मा की तरफ से तो वह सदा उतरने को तैयार ही है ! लेकिन समूह कब तैयार होगा ? और समूह में आप आदमी ही हैं सिर्फ ! उड़ते हुए पक्षी नहीं हैं ? पौधे नहीं हैं ? जंगल के जानवर नहीं हैं ? यह सड़क के किनारे पत्थर नहीं हैं ? परमात्मा जिस दिन उतरेगा, उस दिन पत्थर वंचित रहेगा, आपको मिल जाएगा ? उस दिन पौधे वंचित रहेंगे, आपको मिल जाएगा ? यह सोचना असंभव है।

इसलिए अरविन्द की जो धारणा उतरने की है, उसने हमारे लोभ को तो बड़ा सुख दिया, लेकिन वह सार्थक नहीं है। इसलिए पांडिचेरी में जो प्रयोग चल रहा है, उससे ज्यादा व्यर्थ प्रयोग मनुष्य-जाति के इतिहास में कभी नहीं चला। एकदम व्यर्थ प्रयोग चल रहा है। लेकिन वह हमारे लोभ के अनुकूल पड़ता है, इसलिए चल सकता है।

अरविन्द को सोचते वक्त, दूसरा नाम स्मरण दिलाया है रमण का। रमण अरविन्द से ठीक उल्टे आदमी हैं। अरविन्द बड़े पंडित हैं, तो रमण का पांडित्य से कभी कोई नाता नहीं रहा। अरविन्द बड़े जानकार हैं, तो रमण से गैर-जानकार आदमी खोजना मुश्किल है। अरविन्द सब जानते मालूम पड़ते हैं, लेकिन रमण अज्ञानी होने की तैयारी में हैं। रमण कुछ

जानते हुए नहीं मालूम पड़ते। इसलिए रमण की जिन्दगी में जो संभव हो पाया, वह अरविन्द की जिन्दगी में संभव नहीं हो सका। अरविन्द जानकार बने रहे और रमण जान गये। रमण की जिन्दगी में घटना घटी है। लेकिन चूँकि वे जानकार बिल्कुल नहीं हैं, इसलिए उनके वक्तव्य एक ऐसे आदमी के हैं जो ज्ञान की भाषा जानता ही नहीं है। ज्ञान मिल गया है, ज्ञान की भाषा नहीं जानता। इसलिए वक्तव्य की दृष्टि से वक्तव्य बड़े कमजोर हैं। तर्क की दृष्टि से बड़े दीन हैं। लेकिन अनुभव की दृष्टि से उनकी समृद्धि का कोई मुकाबला नहीं है। रमण कोई 'सिस्टम' तो नहीं बना सकते, कोई व्यवस्था नहीं दे सकते। रमण के सब वक्तव्य 'एटॉमिक' हैं, सब आणविक हैं। ज्यादा हैं भी नहीं। क्योंकि रमण के पास कहने को भी नहीं है। थोड़ा-सा कहने को है—वह जितना जाना है। और वह जो जाना है, उसको कहने के लिए भी बहुत शब्द उनके पास नहीं हैं। थोड़े-से शब्द हैं, जिनमें वे उसको कहे चले जाते हैं। इसलिए रमण को तो एक पन्ने पर इकट्ठा किया जा सकता है। एक पन्ना भी बड़ा पड़ सकता है, एक पोस्टकार्ड भी काफी है। लेकिन अगर अरविन्द को इकट्ठा करने चलो, तो एक 'लाइब्रेरी' भी छोटी है। और ऐसा नहीं है कि अरविन्द जो कह सकते थे वह सब कह गये हैं, अभी उनको कहने के लिए दस-पाँच जन्म लेना पड़े। अभी उनके पास कहने को बहुत था।

इसका यह मतलब नहीं है कि उनके पास कहने को बहुत था इसलिए उन्होंने नहीं जाना। नहीं, इससे कोई बाधा नहीं पड़ती। इससे कोई बाधा नहीं पड़ती। बुद्ध के पास कहने को बहुत है। बुद्ध ने बहुत कहा। बुद्ध रमण जैसे आदमी हैं, अनुभव की तरह; और जानकारी की तरह वह अरविन्द जैसे आदमी हैं। इसलिए कहने का उपाय उनके पास बहुत है। महावीर ने बहुत कम कहा है। महावीर का ज्यादा समय मौन में बीता। बहुत कम कहा है। बहुत थोड़े वक्तव्य हैं महावीर के। और जो वक्तव्य भी हैं, बहुत संक्षिप्त हैं। रमण जैसा मामला दिखता है। महावीर ने बहुत

नहीं कहा। दिगंबरों के पास तो कोई ग्रंथ ही नहीं है महावीर का। श्वेतांबरों के पास ग्रंथ हैं; वह भी महावीर के पांच सौ वर्ष बाद इकट्ठे किये गये हैं।

प्रश्न : आप रमण को बुद्ध तक इतनी दूर ले जाते हैं। उन्हें कृष्ण मूर्ति के निकट रखकर समझाएँ जरा।

दूर और पास नहीं है कुछ। कृष्णमूर्ति ठीक रमण जैसे व्यक्ति हैं। रमण से और बुद्ध, अरविंद इनको मैंने क्यों तोला, उसका कुछ कारण है। कृष्णमूर्ति ठीक रमण जैसे अनुभव के व्यक्ति हैं, लेकिन अरविंद जैसी जानकारी कृष्णमूर्ति की भी नहीं है। हाँ, रमण से ज्यादा मुखर हैं। रमण से ज्यादा तर्कयुक्त हैं। लेकिन कृष्णमूर्ति के तर्क और अरविंद के तर्क में बड़ा फर्क है। अरविंद एक तार्किक हैं, कृष्णमूर्ति तार्किक नहीं हैं। और अगर तर्क का उपयोग कर रहे हैं तो पूरे वक्त तर्क को मिटाने के लिए ही कर रहे हैं। अगर तर्क की पूरी-की-पूरी चेष्टा है, तो वह अतर्क्य में प्रवेश के लिए ही है। लेकिन जानकारी बहुत नहीं हैं। इसलिए मैंने दूर का उदाहरण लिया। बुद्ध से मैंने इसलिए कहा, ताकि आपको दोनों बात ख्याल में आ जाए बुद्ध का अनुभव रमण जैसा और जानकारी अरविंद जैसी। कृष्णमूर्ति का अनुभव रमण जैसा, जानकारी अरविंद जैसी नहीं।

दूसरा फर्क है। रमण बहुत मौन हैं, कृष्णमूर्ति मुखर हैं। इसलिए कृष्णमूर्ति के भी वक्तव्यों को अगर छाँटा जाए तो बहुत ज्यादा नहीं हैं। इसलिए जो कृष्णमूर्ति को सुनते हैं वे अनुभव करेंगे कि वह एक ही चीज को निरंतर चालीस वर्षों से दोहराये चले जा रहे हैं। एक ही बात को दोहराये चले जा रहे हैं। एक पोस्टकार्ड पर उनके वक्तव्य भी इकट्ठे हो सकते हैं। लेकिन वह कहने में ज्यादा विस्तार लेते हैं, तर्क का उपयोग करते हैं। रमण विस्तार भी नहीं लेते। इसको ऐसा समझें कि कृष्णमूर्ति के वक्तव्य तो 'एटॉमिक' हैं, लेकिन वक्तव्यों के आसपास वे तर्क का, विचार का, चिंतन का जाल भी खड़ा करते हैं। रमण के वक्तव्य निपट

‘एटॉमिक’ हैं, उनके आसपास कोई वक्तव्य का, तर्क का, समझाने का जाल भी नहीं है। रमण के वक्तव्य उपनिषदों जैसे हैं, सीधे ‘स्टेटमेंट्स’ हैं। हाँ, उपनिषद कह देते हैं, ब्रह्म है। फिर वह यह भी फिक्र नहीं करता कि क्यों है, कि नहीं, कैसे है, क्या तर्क है, क्यों, है, यह कुछ नहीं। सीधे, ‘बेयर स्टेटमेंट्स’ हैं। ऐसा, कि है। रमण उपनिषद के ऋषियों से जोड़े जा सकते हैं।

प्रश्न : रमण के अज्ञातवाद पर कुछ कहें।

हाँ, रमण या रमण जैसे और लोग भी कहते हैं, जो है वह कभी जन्म नहीं, अज्ञात है; यह दूसरा पहलू है एक और बात का, जिसे हम निरंतर कहते हैं लेकिन ख्याल में नहीं लेते। सैकड़ों वक्तव्य हैं इस बात के कि जो है वह मरेगा नहीं, अमृत है। अमर्त्य है। इसका दूसरा पहलू है। क्योंकि अमर्त्य वही हो सकता है जो अज्ञात हो, जो जन्मा न हो। तो रमण कहते हैं, जो है, वह जन्मा नहीं है। इसीलिए तो जो है, वह मरेगा नहीं। आप कब जन्मे, आपको पता है ?

यह बड़े मजे की बात है, आप कब जन्मे, आपको पता है ? आप कहेंगे कि नहीं, पता तो नहीं है। हाँ, जन्म के लेखे-जोखे हैं, जो दूसरों ने हमें बताएँ। अगर मुझे कोई न बताए कि मैं जन्मा, तो क्या मुझे पता चल सकेगा कि मैं जन्मा ? यह ‘इन्फॉर्मेशन’ है, जो दूसरों ने मुझे दी है। दूसरे मुझे कहते हैं कि फलाँ-फलाँ तारीख को फलाँ-फलाँ घर में मैं जन्मा। अगर यह खबर मुझे न दी जाए तो क्या कोई भी उपाय मेरे पास है, ‘इंट्रॉसिक’; भीतरी, जिससे मैं पता लगा सकूँ कि मैं कभी जन्मा ? नहीं, आपके पास भीतरी कोई ‘इवीडेंस’ नहीं है कि आप जन्मे। असल में भीतर जो है, वह कभी जन्मा ही नहीं, ‘इवीडेंस’ हो कैसे सकता है ? आप कहते हैं कि मैं कभी मरूँगा, लेकिन आपको मरने का कोई अनुभव है ? नहीं, आप कहेंगे, दूसरों को हमने मरते देखा। लेकिन समझ लें कि एक आदमी को हम किसी को मरते न देखने दें—इसमें कोई कठिनाई नहीं है—क्या एक ऐसा

आदमी जिसको हम किसी को मरते न देखने दें, कभी इस नतीजे पर पहुँच सकेगा—किसी भी कारण से, किसी भीतरी वजह से—कि मैं मरूँगा। नहीं पहुँच सकता। यह भी 'आउटर इवीडेंस' है। यह भी हमने किसी और को मरते देखा है। लेकिन हमारे भीतर कोई प्रमाण नहीं है, कोई गवाही नहीं है कि हम मरेंगे। इसीलिए शायद इतने लोग मरते हैं, फिर भी हमें ख्याल नहीं पैदा होता कि हम मरेंगे। हम मरते जाते हैं, सोचते हैं मर रहा होगा दूसरा कोई। बाकी चूँकि भीतरी कोई गवाही नहीं है कि मैं मरूँगा, न भीतरी कोई गवाही है कि मैं कभी जन्मा। भीतर की गवाही किस चीज की है ? भीतर की सिर्फ एक गवाही है कि मैं हूँ, और कोई गवाही नहीं है।

तो गैर-गवाही की बातें माने जाने के लिए रमण मना करते हैं। वह कहते हैं कि जिसकी पक्की गवाही है, उतना ही मानना काफी है। मैं हूँ, इतनी गवाही है। मैं भी वही करता हूँ कि मैं हूँ, उतनी गवाही है। और अगर थोड़े और भीतर प्रवेश करेंगे, तो पाएँगे, मैं भी नहीं हूँ। हूँ, इतनी ही गवाही है।

पंद्रहवाँ प्रवचन

अनंत सागररूप चेतना के प्रतीक कृष्ण

2 अक्टूबर 1970, सार्य; मनाली (कुल्लू)

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र के महानगरों में

(महाराष्ट्र) महाराष्ट्र के महानगरों में

प्रश्न : भगवान श्री, श्री अरविंद के कृष्ण-दर्शन के बारे में कुछ कहने को बाकी रह गया था। आपने अहमदाबाद में बताया था कि वह बहुत हद तक मानसिक प्रक्षेपण हो सकता है। तो अरविंद का कृष्ण-दर्शन क्या मानसिक-प्रक्षेपण है या 'मिस्टिक' अनुभूति है ?

एक दूसरा प्रश्न भी है—अर्जुन यदि सिर्फ निमित्त मात्र है, तो वे यंत्रमात्र रह जाते हैं। उनकी 'इंडिविजुअलिटी' का क्या होगा ?

कृष्ण-दर्शन, या क्राइस्ट का दर्शन या बुद्ध या महावीर का दो प्रकार से संभव है। एक, जिसको 'मेंटल प्रोजेक्शन' कहें, मानसिक प्रक्षेपण कहें; जबकि वस्तुतः कोई सामने नहीं होता लेकिन हमारे मन की वृत्ति ही आकार लेती है। जबकि वस्तुतः हमारा विचार ही आकार लेता है। जबकि वस्तुतः हम ही बाहर भी रूप के निर्माता होते हैं। मानसिक प्रक्षेपण, 'मेंटल प्रोजेक्शन' से मतलब यह है कि वस्तुतः उस प्रक्षेपण, उस रूप, उस आकृति के पीछे कोई भी नहीं होता। मन की यह भी क्षमता है। मन की यह भी शक्ति है। जैसे रात हम स्वप्न देखते हैं, ऐसे ही हम खुली आंख से भी सपने देख सकते हैं। तो एक तो यह संभावना है।

दूसरी संभावना, कृष्ण-दर्शन की, कृष्ण-रूप के दर्शन की संभावना नहीं है, कृष्ण-आकृति के दर्शन की संभावना नहीं है, दूसरी संभावना कृष्ण चेतना में डूबे होने की, कृष्ण-चेतना के विस्तार के अनुभव की, कृष्ण-चेतना के साक्षात्कार की संभावना है। जैसा मैंने कल कहा था कि एक तो सागर-रूप कृष्ण और एक लहरूप कृष्ण। लहरूप कृष्ण का उपयोग उनके सागररूप अनुभव के लिए किया जा सकता है। उनके चित्र, उनके प्रतीक;

54 : कृष्ण : जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि

उनकी मूर्ति का उपयोग उनके सागररूप दर्शन के लिए किया जा सकता है। लेकिन जब उनका सागररूप दर्शन हुआ तब कृष्ण की प्रतिमा विदा हो जाएगी, विलीन हो जाएगी और कृष्ण की आकृति खो जाएगी, शून्य हो जाएगी। कृष्ण की प्रतिमा का उपयोग हो सकता है उनके विराट दर्शन के प्राथमिक बिंदु की तरह। लेकिन अगर किसी को विराट का तो दर्शन नहीं होता, कृष्ण की प्रतिमा का ही दर्शन होता है, कृष्ण की आकृति का ही दर्शन होता है, तो वह सिर्फ मानसिक प्रक्षेपण है।

तो जिसको कृष्ण-चेतना का दर्शन होगा, उस चेतना का अनुभव आकृति का अनुभव नहीं है। उस चेतना का अनुभव रूप का अनुभव नहीं है। यह सिर्फ नाम की बात होगी कि वंसा आदमी चूंकि कृष्ण को प्रेम करता है, या कृष्ण की आकृति से उसने यात्रा की है, इसलिए इस अनुभव को कृष्ण-चेतना का अनुभव कहेगा। अगर किसी दूसरे आदमी को यही अनुभव हुआ हो—यही होगा अनुभव; बुद्ध की आकृति से भी हो जाएगा; जीसस की आकृति से भी हो जाएगा—तो जीसस से चलने वाला इसको क्राइस्ट का अनुभव कहेगा, कृष्ण से चलने वाला कृष्ण का अनुभव कहेगा, लेकिन यह अनुभव सागररूप का है। अरविंद जिस अनुभव की बात कर रहे हैं वह कृष्ण की आकृति और कृष्ण के व्यक्तित्व के अनुभव की बात कर रहे हैं। वे कहते हैं, कृष्ण ही उनके सामने साकार खड़े हैं। ऐसा अनुभव प्रक्षेपण है। 'मेंटल प्रोजेक्शन' है। इसका बड़ा सुख है। इसका बड़ा रस है, लेकिन है यह हमारे मन का विस्तार। यह हमारे मन ने ही चाहा है, यह हमारे मन का ही खेल है, यह हमारे मन ने ही फैलाया और जाना है।

मन से हम शुरू कर सकते हैं, अंत नहीं होना चाहिए। मन से हम शुरू करेंगे ही, लेकिन अंत तो अ-मन पर, 'नो माइंड' पर होना चाहिए। यह बड़े मजे की बात है कि जहाँ तक रूप है, वहाँ तक मन होता है। जहाँ तक आकृति है, वहाँ तक मन होता है। जहाँ रूप और आकृति नहीं होती वहाँ

मन खो जाता है, वहाँ मन के होने का उपाय नहीं है। मन का भोजन है आकृति, रूप, सगुणता। अगर सगुण खो जाए तो मन भी खो जाता है। और जिस कृष्ण के दर्शन की मैं बात कर रहा हूँ, वह मन के रहते नहीं होगा, वह मन के खोने पर होता है।

तो जिसने भी कभी कहा हो कि हाँ मैंने कृष्ण को व्यक्तिरूप में जाना और पहचाना और देखा और मिले, ये वे विराट चेतना के पर्दे पर अपने मन की आकृति की 'प्रोजेक्ट' कर रहे हैं। जैसे रात फिल्म के पर्दे पर पीछे 'प्रोजेक्टर' होता है, और फिल्म के पर्दे पर चीजें दिखायी पड़नी शुरू हो जाती हैं जो वहाँ नहीं हैं, वहाँ सिर्फ कोरा पर्दा है। ऐसे ही हमारे मन का उपयोग हम 'प्रोजेक्टर' की भाँति कर सकते हैं, करते हैं। लेकिन यह अनुभव आध्यात्मिक अनुभव नहीं है, यह अनुभव 'साँझिक एक्सपीरिएंस' है, मानसिक अनुभव है। सुख इससे मिलेगा, क्योंकि कृष्ण को जानना, कृष्ण को देख लेना बड़ा तृप्तिदायी होगा। लेकिन यह सुख ही है, यह आनंद नहीं है। और न सत्य की अनुभूति है।

अरविंद पंडित थे, इसलिए अगर मैं कह रहा होऊँ कि उनका जो अनुभव है, वह 'प्रोजेक्शन' है, ऐसी बात नहीं है। अनुभव का जो ढंग है वह 'प्रोजेक्शन' का है। अनुभव का जो वे चित्रण कर रहे हैं, जो वर्णन कर रहे हैं, वह 'प्रोजेक्शन' का है। और अगर सागररूप कृष्ण का अनुभव हो—या सागररूप क्राइस्ट का, उसमें बहुत फर्क नहीं पड़ता—तो वह अनुभव कभी खोएगा नहीं। वह एक बार हुआ कि हुआ। इसके बाद उसके अतिरिक्त कोई अनुभव ही नहीं बचेगा। इसके बाद वृक्षों में, पौधों में, पत्थर में, लोगों में, सब तरफ कृष्ण ही दिखायी पड़ने लगेंगे। लेकिन 'प्रोजेक्शन' तो आएगा और चला जाएगा। वह एक क्षण उगेगा और खो जाएगा।

यह भी ध्यान लेने जैसी बात है कि 'प्रोजेक्शन' का जो अनुभव है, मानसिक चित्रों का जो देख लेना है, उसे अरविंद पंडित होने की वजह से नहीं देख पा रहे हैं। क्योंकि पंडित चित्रों को देखने में असमर्थ होता है।

अरविंद की एक और दिशा भी है, वह काव्य की दिशा है। अरविंद पंडित ही नहीं, महाकवि भी हैं। और रवींद्रनाथ से कम हैसियत के कवि नहीं हैं अरविंद। और अगर 'नोबल प्राइज' उन्हें नहीं मिल सका तो इसका कारण यह नहीं है कि उन्होंने रवींद्रनाथ से कम हैसियत की कविता लिखीं, उसका कुल कारण यह है कि उनकी कविता दुरुह है और समझ में नहीं आ सकी। 'सावित्री' दुनिया के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में एक है। दस-पाँच महाकाव्य उसकी कोटि के महाकाव्य हैं। पंडित तो नहीं देख सकता 'प्रोजेक्शन', लेकिन अरविंद का कवि देख सकता है। और अरविंद के भीतर जो कवि की क्षमता है, वही आसान कर देगी उन्हें कि वे कृष्ण को देख लें। उनका कवि-हृदय ही 'प्रोजेक्शन' कर पाता है। प्रेक्षेपण जो है, वह कवि-हृदय के लिए आसान है। शुष्क तर्क अकेला अगर उनके जीवन में हो तो यह प्रेक्षेपण भी नहीं हो सकता। उन्होंने जो अभिव्यक्ति की है अति बुद्धिवादी शब्दों में, इस कारण नहीं कह रहा हूँ कि वे सिर्फ जानकार हैं, क्योंकि अभिव्यक्ति तो तर्क के और बुद्धि के शब्दों में करनी ही होती है। लेकिन ये शब्द किसी पार की कोई खबर नहीं लाते, किसी 'ट्रांसेडेंस' की कोई खबर नहीं लाते।

हम शब्दों का प्रयोग दो तरह से कर सकते हैं। एक तो शब्दों का प्रयोग हम ऐसा कर सकते हैं जबकि शब्दों का अर्थ शब्द की सीमा के भीतर होता है। जितना बड़ा शब्द होता है उतना ही बड़ा अर्थ होता है। एक शब्द का प्रयोग हम ऐसा कर सकते हैं, जो कभी-कभी करते हैं, जबकि अर्थ तो बड़ा होता है और शब्द छोटा होता है। अरविंद के साथ उल्टा मामला है। उनके शब्द बहुत बड़े हैं, अर्थ बहुत छोटा है। अरविंद बहुत बड़े शब्दों का उपयोग करते हैं। लंबे-लंबे शब्दों का उपयोग करते हैं। शब्द से अर्थ अगर ज्यादा हो, तो 'ट्रांसेंड' करता है और 'मिस्ट्री' में प्रवेश कर जाता है। और अगर शब्द अर्थ से बहुत बड़ा हो, तो ज्यादा-से-ज्यादा फिलॉसिफी में; बल्कि फिलॉसिफी भी न कहकर फिलॉलाजी में—दर्शन में भी नहीं, भाषा-

शास्त्र में प्रवेश कर जाता है। शब्द से बड़ा अर्थ जब शब्द लेकर चलता है तो गर्भित हो जाता है, 'प्रेग्नैट' हो जाता है। अरविद का कोई शब्द 'प्रेग्नैट' नहीं है, उसमें कुछ गर्भ नहीं है। उसके पार जाने वाला कोई सूचक 'ऐरो' नहीं है। ऐसा नहीं है कि शब्द हर क्षण शब्द के पार की सूचना दे रहा हो। अरविद के शब्दों का सारा उपयोग ऐसा है कि शब्द पूरी सूचना दे रहा है जितना उसमें अर्थ है, वलिक अर्थ से भी ज्यादा। और कारण हैं उसके।

जैसा मैंने सुबह आपसे कहा कि अरविद का सारा शिक्षण जहाँ हुआ वहाँ उन दिनों जैसा विज्ञान पर डार्विन हावी था, ठीक वैसे 'फिलॉसिफी' पर हीगल हावी था। हीगल ने बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग किया है, जिनमें अर्थ उतना नहीं है। लेकिन इतने जटिल और बड़े शब्दों का उपयोग किया है कि हीगल को पढ़ते वक़्त पहला जो असर पड़ता है वह बहुत 'प्रोफाउंडिटी' का है। वह ऐसा लगता है कि बड़ी गहरी बातें कही जा रही हैं। क्योंकि अक्सर हमें जो बात समझ में नहीं आती उसे हम गहरा समझ लेते हैं। यह जरूरी रूप से सच नहीं है। जो बात समझ में नहीं आती वह जरूरी रूप से सच नहीं होती। हालाँकि यह जरूर सच है कि जो गहरी होती है, वह आसानी से समझ में नहीं आती है। लेकिन इसमें उल्टा खेल चल जाता है। तो हीगल ने बड़े कठिन और बड़े दुरूह और लंबे शब्दों का प्रयोग किया है, और जिसको कहना चाहिए बहुत 'ब्रेकेटेड लैंग्वेज' का उपयोग किया है। बड़े कोष्ठक पर कोष्ठक लगाये हैं भाषा में। उसकी वजह से बहुत जाल हो गया है और समझना मुश्किल हो गया है। लेकिन जैसे-जैसे 'स्कॉलरशिप' आगे बढ़ी, वैसे-वैसे हीगल की प्रतिमा छोटी होने लगी, क्योंकि जितना ही समझ में आया उतना ही पाया कि इस आदमी को कहना बहुत कम है, लेकिन कहता बहुत लंबे रास्ते से है। अरविद का भी कहने का ढंग हीगलियन है। वे हीगल जैसे ही 'सिस्टम मेकर' हैं। तो वह कहते तो बहुत कम हैं, शब्द बड़े उपयोग करते हैं, लंबे उपयोग करते हैं, बहुत लंबा चक्कर लेते हैं।

अभिव्यक्ति तो बुद्धिगत रूप से करनी पड़ेगी, लेकिन अभिव्यक्ति निरंतर ही अपने से पार का इशारा बनती हो तो इस बात की खबर लाती है कि उस आदमी ने शब्दों के पार भी कुछ जाना है। लेकिन सब शब्दों में समा जाता हो, तो इस बात की खबर नहीं मिलती। और फिर, सारा अरविंद को पढ़ जाने के बाद मुंह में जो स्वाद छूट जाता है, वह सिर्फ शब्दों का है। मुंह में जो स्वाद छूट जाता है, वह अनुभव का जरा भी नहीं है। कई बार कोई आदमी बिल्कुल न बोले, तो उसकी मौजूदगी भी मुंह में अनुभूति का स्वाद छोड़ सकती है। कई बार कोई बहुत बोले, तो भी मुंह में सिर्फ शब्दों का स्वाद छूट जाता है, अनुभव का कोई स्वाद नहीं छूट पाता है। अभिव्यक्ति तो बुद्धिगत होगी ही, लेकिन जब अनुभूति की अभिव्यक्ति होगी तो वह साथ-ही-साथ बुद्धि को अतीत और अतिक्रमण करने वाली भी होती है। वह हर बार सूचना कर जाती है कि कुछ कहने योग्य था जो नहीं कहा जा सकता है। अरविंद को देखकर ऐसा लगेगा कि जो भी कहने योग्य था उससे भी ज्यादा अरविंद कह सके हैं। इससे तो रवींद्रनाथ का मुझे एक स्मरण आता है, उससे आपकी समझ में आए।

रवींद्रनाथ के मरने के कुछ घड़ियों पहले एक मित्र ने रवींद्रनाथ को कहा कि तुमने तो गा लिया जो तुम्हें गाना था, अब तुम शांति से, सुख से, परमात्मा को धन्यवाद देते हुए विदा हो सकते हो। तुम्हें जो करना था वह तुम कर चुके पृथ्वी पर। रवींद्रनाथ ने आंख खोली और कहा कि कैसी गलत बात कह रहे हो ! मैं तो यह प्रार्थना कर रहा हूँ परमात्मा से कि अभी तो मैं साज जमा पाया था, बिठा पाया था, ठोंक-पीटकर मृदंग को, सितार को तैयार कर पाया था, और यह विदा होने का वक्त आ गया। अभी मैंने गाया कहाँ ? अभी जिसको लोगों ने मेरे गीत समझे हैं, वह केवल साज का ठोंकना-पीटना था। अब साज तैयार हो गया और मेरे जाने का क्षण आ गया। अभी मैं वह कह कहाँ पाया जो मुझे कहना था !

लेकिन अगर कोई अरविंद से कहे, तो अरविंद यह न कह सकेंगे।

अरविंद बिल्कुल कह चुके हैं जो उन्हें कहना था। बड़े ढंग से और व्यवस्था से कह चुके हैं। अरविंद और रवींद्र में मैं कहूंगा कि रवींद्र कहीं ज्यादा 'मिस्टिक' हैं बजाय अरविंद के। ज्यादा रहस्य की तरफ उनके इशारे हैं। अरविंद के इशारे बहुत साफ हैं, 'नॉन मिस्टिक' हैं, रहस्य की तरफ नहीं हैं।

एक बात और पूछी है। वह यह पूछी है कि अगर अर्जुन सिर्फ निमित्त-मात्र है ; और जो होना था वह होना है ; जो हो चुका है, वही होना है ; तो फिर अर्जुन के व्यक्तित्व का क्या होगा ? वह तो फिर एक 'इंस्ट्रूमेंट', एक साधन रह जायेगा ?

इसे समझने की कोशिश करेंगे तो बड़ी सरलता से कुछ सत्य दिखायी पड़ेंगे। अगर किसी को 'इंस्ट्रूमेंट' बनाया जाए, तो उसका व्यक्तित्व नष्ट होता है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति 'इंस्ट्रूमेंट' बन जाए तो उसका व्यक्तित्व खिलता है, नष्ट नहीं होता। अगर कोई दबाव डालकर किसी आदमी को साधन बना दे, तो उस आदमी की आत्मा मर जाती है। लेकिन अगर कोई अपने ही हाथ से समर्पण कर दे और सब छोड़ दे और साधन बन जाए, तो उसकी आत्मा पूरी तरह खिल जाती है। उसका व्यक्तित्व नहीं नष्ट होगा, 'फुलफिल्ड' हो जाता है। जो फर्क है असल में वह यह नहीं है। फर्क इतना ही है कि अगर मेरे ऊपर जबर्दस्ती आप हथकड़ियाँ डाल दें तो मैं गुलाम हो जाता हूँ। और अगर मैं हथकड़ियाँ उठाकर आपको दे दूँ और कहूँ कि मेरे हाथ में डाल दें, तो मैं गुलामी का भी नियंता हो जाता हूँ। मैं अपनी गुलामी का भी निर्धारक हो जाता हूँ। मैं निरंतर डायोजनीज की कहानी कहता हूँ, वह आपको कहना अच्छा होगा।

डायोजनीज गुजरता है एक जंगल से। नंगा फकीर, अलमस्त आदमी है। कुछ लोग जा रहे हैं गुलामों को बेचने बाजार। उन्होंने देखा इस डायोजनीज को। सोचा कि यह आदमी पकड़ में आ जाए तो दाम अच्छे

मिल सकते हैं। और ऐसा गुलाम कभी बाजार में बिका भी नहीं है। बड़ा शानदार है ! ठीक महावीर जैसा शरीर अगर किसी आदमी के पास था दूसरे फकीरों में, तो वह डायोजनीज के पास था। मैं तो यह निरंतर कहता ही हूँ कि महावीर नग्न इसलिए खड़े हो सके कि वे इतने सुंदर थे कि ढाँकने योग्य कुछ था नहीं। बहुत सुंदर व्यक्तित्व था। वैसे डायोजनीज का भी व्यक्तित्व था। गुलामों ने लेकिन सोचा कि हम हैं तो आठ, लेकिन इसको पकड़ेंगे कैसे ! यह हम आठ की भी मिट्टी कर दे सकता है। यह अकेला काफी है। मगर फिर भी उन्होंने सोचा कि हिम्मत बाँधो। और ध्यान रहे, जो दूसरे को दबाने जाता है वह हमेशा भीतर अपने को कमजोर समझता ही है। वह सदा भयभीत होता है। ध्यान रखें, जो दूसरे को भयभीत करता है, वह भीतर भयभीत होता ही है। सिर्फ वे ही दूसरे को भयभीत करने से बच सकते हैं, जो अभय हैं। अन्यथा कोई उपाय नहीं। असल में वह दूसरे को भयभीत ही इसलिए करता है कि कहीं वह हमें भयभीत न कर दे। मेक्या वेली ने लिखा है, इसके पहले कि कोई तुम पर आक्रमण करे, तुम आक्रमण कर देना ; यही सुरक्षा का श्रेष्ठतम उपाय है। तो डरा हुआ आदमी।

वे आठों डर गये। बड़ी गोष्ठी करके, बड़ा पक्का निर्णय करके, चर्चा करके वे आठों एकदम से हमला करते हैं डायोजनीज पर। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। अगर डायोजनीज उनके हमले का जवाब देता तो वह मुश्किल में न पड़ते। क्योंकि उनकी योजना में इसकी चर्चा हो गयी थी। डायोजनीज उनके बीच में आँख बंद करके हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है और कहता है, क्या इरादे हैं ? क्या खेल खेलने का इरादा है ? वह बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं कि अब इससे क्या कहें ! उन्होंने कहा कि माफ करें, हम आपको गुलाम बनाना चाहते हैं। डायोजनीज ने कहा, इतने जोर से कूदने-फाँदने की क्या जरूरत है ! नासमझो, निवेदन कर देते, हम राजी हो जाते। इसमें इतना उछल-कूद, इतना छिपना-छिपाना, यह सब क्या

कर रहे हो ? बंद करो यह सब । कहाँ हैं तुम्हारी जंजीरें ? वे तो बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं । क्योंकि ऐसा आदमी कभी नहीं देखा था कि जो कहे—कहाँ हैं तुम्हारी जंजीरें ? और इतने डाँटकर वह पूछता है जैसे मालिक वह है और गुलाम ये हैं । जंजीरें उन्होंने निकालीं । डरते हुए दे दीं, उसने हाथ बढ़ा दिये और कहा कि बंद करो । और वह कहने लगे, आप क्या कह रहे हैं, हम आपको गुलाम बनाने आए थे, आप बने जा रहे हैं ! डायोजनीज ने कहा कि हम यह राज समझ गये कि इस जगत में स्वतंत्र होने का एक ही उपाय है और वह यह कि गुलामी के लिए भी दिल से राजी हो जाएँ । अब हमें कोई गुलाम बना नहीं सकता है । अब उपाय ही न रहा तुम्हारे पास । अब तुम कुछ न कर सकोगे ।

फिर वह डरे हुए उसको बाँधकर चलने लगे, तो डायोजनीज ने कहा कि नाहक तुम्हें यह जंजीरों का बोझ ढोना पड़ रहा है । क्योंकि उन जंजीरों को उन्हें पकड़ कर रखना पड़ रहा है । डायोजनीज ने कहा, उतार कर फेंक दो । मैं तो तुम्हारे साथ चल ही रहा हूँ । एक ही बात का ख्याल रखो कि तुम समय के पहले मत भाग जाना, मैं भागने वाला नहीं हूँ । तो उन्होंने जंजीरें उतार कर रख दीं, क्योंकि आदमी तो ऐसा ही मालूम हो रहा था । जिसने अपने हाथ में जंजीरें पहनवा दीं, उसको अब और जंजीर बाँधकर ले जाने का क्या मतलब था ? फिर जहाँ से भी वे निकलते हैं तो डायोजनीज शान से चल रहा है और जिन्होंने गुलाम बनाया है, वह बड़े डरे हुए चल रहे हैं कि पता नहीं, कोई उपद्रव न कर दे यह किसी जगह पर, कोई सड़क पर, किसी गाँव में । और जगह-जगह जो भी देखता है वह डायोजनीज को देखता है और डायोजनीज कहता है, क्या देख रहे हो ? ये मेरे गुलाम हैं । ये मुझे छोड़कर नहीं भाग सकते । वह जगह-जगह यह कहता फिरता है कि ये मुझे छोड़कर नहीं भाग सकते, ये मुझसे बँधे हैं । और वह बेचारे बड़े हतप्रभ हुए जा रहे हैं । किसी तरह वह बाजार आ जाए !

वह बाजार आ गया। उन्होंने जाकर किसी से गुप्तगू की, जो बेचने वाला था उससे बातचीत की। कहा कि जल्दी इस आदमी को नीलाम पर चढ़ा दो, क्योंकि इसकी वजह से हम बड़ी मुसीबत में पड़े हुए हैं। और भीड़ लग जाती है और लोगों से यह कहता है कि ये मेरे गुलाम हैं, अच्छा, यह मुझे छोड़कर नहीं भाग सकते। अगर हों मालिक, भाग जाएँ। तो इसको छोड़कर कहाँ भागें हम, कीमती आदमी है और पैसा अच्छा मिल जाएगा। तो उसे टिकटी पर खड़ा किया जाता है और नीलाम करने वाला जोर से चिल्लाता है कि एक बहुत सानदार गुलाम बिकने आया है, कोई खरीददार है? तो डायोजनीज जोर से चिल्लाकर कहता है कि चुप ना-समझ! अगर तुझे आवाज लगाना नहीं आता है तो आवाज हम लगा देंगे। वह घबड़ा जाता है, क्योंकि किसी गुलाम ने कभी उस नीलाम करने वाले को इस तरह नहीं डाँटा था। और डायोजनीज चिल्लाकर कहता है कि आज एक मालिक इस बाजार में बिकने आया है, किसी को खरीदना हो तो खरीद ले।

जिस 'इंस्ट्रूमेंटालिटी' में, जिस यांत्रिकता में हम यंत्र बनाए जाते हैं, जहाँ हमारी मजबूरी है, जहाँ गुलाम की तरह हैं, वहाँ तो व्यक्तित्व मरता है। लेकिन कृष्ण अर्जुन से यह नहीं कह रहे हैं कि तू यंत्रवत बन जा। कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि तू समझ। इस जगत की धारा में तू व्यर्थ ही लड़ मत। इस धारा को समझ, इसमें आड़े मत पड़, इसमें बह। और तब तू पूरा खिल जाएगा। अगर कोई आदमी अपने ही हाथ से समर्पित हो गया है इस जगत के प्रति, सत्य के प्रति, इस विश्वयात्रा के प्रति, तो वह यंत्रवत नहीं है, वही आत्मवान है। क्योंकि समर्पण से बड़ी और कोई घोषणा अपनी मालिकियत की इस जगत में नहीं है।

इस बात को थोड़ा ठीके से समझ लेना।

समर्पण से बड़ी घोषणा, इस जगत में अपनी मालिकियत की और दूसरी नहीं है। क्योंकि अगर मैं समर्पित करता हूँ तो इसका मतलब ही यह

है कि मैं अपना मालिक हूँ और समर्पित कर सकता हूँ। तो इससे अर्जुन यंत्रवत नहीं हो जाता, इससे अर्जुन आत्मवान हो जाता है। और उसका व्यक्तित्व पहली दफे पूरी निष्चेष्टता में, 'एफेंटलेसली' लिखता है।

प्रश्न : भगवान श्री, हम फिर लौटकर अरविंद के कृष्ण-दर्शन पर आ रहे हैं। आपने बताया कि वह उनका आत्मप्रक्षेपण लगता है। लेकिन, आपने एक बार बताया था कि आज भी लामा-पद्धति के अनुसार एक ऐसा दिन आता है जबकि कुछ अधिकारी लामा के बुद्ध साथ आज भी संपर्क स्थापित करते हैं। एक बार और भी जब आप गांधी पर बोल रहे थे, तब किसी ने आपसे प्रश्न किया था कि आप ऐसी बात गांधी के संबंध में कैसे कहते हैं? क्या गांधी ने ऐसा कहा? तो आपने कहा था कि मैं यह बात गांधी से पूछकर कह रहा हूँ। तीसरी बात और। लामा-पद्धति के बारे में ऐसा भी पढ़ने में आया है कि अब भी तिब्बत में कुछ वर्ष पूर्व तक ऐसे लामा थे जो कि जीवित अवस्था में भी सूक्ष्म-शरीर से दूसरे स्थान पर पहुँचकर स्थूल-रूप से अपने दर्शन देते थे और वापस अपने स्थान पर आ जाया करते थे। इन बातों के बारे में मैं आपसे कुछ जानना चाहता हूँ।

इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लें।

एक तो, ऐसा मैंने कहा है कि बुद्धपूर्णिमा के दिन जिस हिमालय की शृंखलाओं में हम बैठे हैं, इसी हिमालय के किसी शिखर पर बुद्धपूर्णिमा के दिन एक विशेष घड़ी में बुद्ध के व्यक्तित्व का दर्शन होता है। पाँच सौ लामाओं से ज्यादा उस पर्वत शिखर पर कभी नहीं हुए हैं। उन पाँच सौ में से जब एक कम होता है, तभी एक नये लामा को जगह मिलती है। लेकिन इसमें और कृष्ण के दर्शन में, जो अरविंद को हुए, बुनियादी फर्क है। कृष्ण के दर्शन में अरविंद चेष्टारत हैं। इस दर्शन में बुद्ध चेष्टारत हैं, लामा नहीं। लामा सिर्फ मौजूद होते हैं।

इस फर्क को बहुत ठीक से समझ लेना चाहिए।

यह बुद्ध का आश्वासन है कि बुद्धपूर्णिमा के दिन फलाँ-फलाँ पर्वत पर

रात्रि के इतने क्षणों में वे प्रगट होंगे। यह बुद्ध का सागररूप जो है, इस रात की इस घड़ी में फिर लहर बनेगा। लेकिन इसमें लामा कुछ भी नहीं कर रहे हैं। उनका कोई 'पार्ट' नहीं है इसमें। एक फर्क।

दूसरा फर्क, अरविद का दर्शन अकेले में हुआ दर्शन है। 'प्रोजेक्शन' में और इसमें बुनियादी फर्क है। ये पांच सौ लोग इकट्ठा दर्शन करते हैं। 'प्रोजेक्शन' हमेशा 'पर्सनल' होता है। उसमें दूसरे आदमी को 'पार्टीसिपेट' नहीं करवाया जा सकता। अगर अरविद को जिस कृष्ण के दर्शन हो रहे हैं, आप कहें कि हम भी इस कमरे में आ जाएँ और हमको भी करवा दें, तो वह कहेंगे, यह नहीं हो सकता। यह मुझको ही होता है, इसको दूसरे आदमी के साथ भागीदारी में नहीं देखा जा सकता। लेकिन पांच सौ व्यक्तियों के सामने जब कोई चीज प्रगट होती है, तो इसको व्यक्ति-मन का 'प्रोजेक्शन' नहीं कह सकते। और दूसरी बात यह कि पांच सौ लोग 'टैली' करते हैं कि हाँ ठीक, ठीक घड़ी पर, ठीक समय पर जो दिखाई पड़ा है वह, जो सुनायी पड़ा है वह, इसके पांच सौ गवाह होते हैं। अरविद के अकेले वह खुद ही गवाह है। उससे भी पहले जो मैंने बात कही, उस कृष्ण-दर्शन में अरविद की सतत चेष्टा है। उसमें पूरा प्रयास है कि कृष्ण का दर्शन कैसे हो? इसमें कोई चेष्टा नहीं है। इसमें एक घड़ी पर एक आश्वासन है, जो पूरा होता है। एक लहर जो पीछे सागर में उठी थी, वायदा कर गयी है कि फलाँ-फलाँ घड़ी तुम इस तट पर इकट्ठे हो जाना, मैं फिर उठूँगी।

प्रश्न : वह 'कलेक्टिव ऑटो-सर्जेशन' हो सकता है।

इसके कई कारण हैं कि नहीं हो सकता। क्योंकि यह जो पांच सौ की सीमित संख्या है, इसमें हर व्यक्ति प्रवेश नहीं पाता। और सिर्फ वे ही लोग प्रवेश पाते हैं जो अपने अचेतन चित्त को जानने में समर्थ हो गये हैं। वह उसकी पात्रता का नियम है। जब तक अचेतन चित्त पर हमारी अपनी सामर्थ्य नहीं है, तब तक 'कलेक्टिवली' हम 'हिप्नोटाइज्ड' हो सकते हैं।

लेकिन जिस दिन मेरे अपने अचेतन चित्त का मुझे पता हो गया, उस दिन मुझे 'हिप्नोटाइज़्ट' नहीं किया जा सकता। उस दिन कोई उपाय नहीं, क्योंकि मेरे भीतर वह कोई हिस्सा नहीं रहा जहाँ सुभाव डालकर और मेरे सामने कोई 'प्रोजेक्शन' करवाया जा सके। इसलिए एक लामा के हटने पर ही दूसरा लामा चुना जाता है। और वह चुनाव भी बड़ी मुश्किल का चुनाव है !

लामा का चुनाव बड़ी मुश्किल का चुनाव है और उसके बड़े अजीब नियम हैं ! एक लामा मरता भी है...अभी यह दलाई लामा जो आज हैं, यह पिछले दलाई लामा की ही आत्मा हैं...पिछला दलाई लामा जब मरता है, एक दलाई लामा जब मरता है तो वह अपना वक्तव्य छोड़ जाता है कि अगली बार इस-इस शरीर के ढंग में मैं प्रगट होऊँगा, तुम खोज लेना। और एक अजीब बात है कि एक छोटा-सा सूत्र छोड़ जाता है। उस सूत्र की पूरे तिब्बत के गाँव-गाँव में बँड पीटकर घोषणा की जाती है। उस सूत्र का जो बच्चा जवाब दे देता है—बहुत मुश्किल है वह। दलाई लामा एक मरेगा, तो कितने वर्ष बाद तिब्बत के गाँव-गाँव में वह सूत्र घुमाया जाए, इसकी वह सूचना कर जाएगा। क्या-क्या चिह्न उस लड़के पर होंगे, इसकी सूचना कर जाएगा। और इसका उत्तर सिवाय इस दलाई लामा को किसी को भी पता नहीं है। वह उत्तर लिखकर रख जाएगा, वह सब 'सील्ड' होगा। और जब कोई बच्चा उसका उत्तर दे देगा और सारे चिह्न मिल जाएँगे, तब वह 'सील्ड' उत्तर खोला जाएगा। अगर वह उत्तर वही है जो इस बच्चे ने दिया है, तो गवाही होगी कि यह दलाई लामा के योग्य हो गया, इसको दलाई लामा की जगह पर बिठा दिया जाए। यह उसकी ही आत्मा जो उत्तर लिखकर गयी थी, उत्तर दे रही है। तो तिब्बती लामाओं की परंपरा के अपने बड़े अजीब सूत्र हैं। यह जो एक आदमी खाली हो जाएगा, इस खाली आदमी को खोजने के नियम हैं। और इस पर सब तरह के प्रयोग करके यह जाँचने की कोशिश की जाएगी कि यह आदमी 'हिप्नो-

टाइज्ड' तो नहीं हो सकता। अगर यह हो जाता है, तो यह पात्र नहीं होगा। इसलिए 'कलेक्टिव हिप्नोसिस' का कोई उपाय नहीं है।

फिर कुछ भी किया नहीं जाता। सिर्फ ये पाँच सौ लामा एक खास घड़ी में, एक खास क्षण में मौन चुपचाप खड़े हो जाते हैं और घटना घटती है। न कोई सुझाव दिया जाता, न कोई बात की जाती, न कोई चीत की जाती है। यह बहुत भिन्न मामला है। यह अरविंद के कृष्ण-दर्शन का मामला नहीं है।

दूसरी बात, जैसा मैंने कहा कि उन आत्माओं से जिनके शरीर तो छूट गये लेकिन जो अभी सागररूप नहीं हो गयी हैं, संबंध स्थापित किये जा सकते हैं। जो आत्माएँ शरीर तो छोड़ चुकी हैं, लेकिन अभी सागररूप में खो नहीं गयी हैं, अशरीरी जिनका व्यक्तित्व है, उनसे संबंध स्थापित किए जा सकते हैं। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। उसमें जरा भी कठिनाई नहीं है।

कृष्ण अशरीरी आत्मा नहीं हैं, सागररूप हो गये हैं। गांधी अशरीरी आत्मा हैं। साधारण रूप से जो लोग भी मर जाते हैं, इन सबसे संबंध स्थापित किये जा सकते हैं। उसके अपने नियम, अपनी विधि, अपने 'टेक्नीक' है। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। यह बड़ी सरल-सी बात है। कई बार ऐसी आत्माएँ अपने स्वजनों से खुद भी संबंध स्थापित करने की चेष्टा करती हैं। हम घबड़ा जाते हैं उससे, हम परेशान हो जाते हैं उससे। जिनको हमने बहुत प्रेम किया है, उनको भी हम अशरीर देखकर प्रेम करने को राजी न होंगे। जिन्हें हमने बहुत चाहा है वे भी कल अगर शरीर के बिना हमारे द्वार पर उपस्थित हो जाएँ तो हम दरवाजा बंद करके पुलिस को चिल्लाएँगे कि हमें बचाओ। क्योंकि हमने शरीर को ही पहचाना है। उससे गहरी तो हमारी कोई पहचान नहीं है।

जो आत्माएँ शरीर के बाहर हैं, लेकिन नये जन्मों की तलाश में हैं, उनसे संबंध स्थापित करना बहुत सरल-सी बात है। न उसमें 'प्रोजेक्शन'

का सवाल है, न उसमें उनके प्रकट होने का सवाल है, सिर्फ उनके पास शरीररूपी यंत्र नहीं रहा, बाकी उनके पास सारे यंत्र हैं। इसलिए आपको उनसे संबंध स्थापित करने का थोड़ा-सा ख्याल हो तो बड़ी आसानी से कर सकते हैं। यहाँ हम इतने लोग बैठे हैं, यहाँ ऐसा नहीं है कि हम इतने ही लोग बैठे हैं। जितने दिखाई पड़ते हैं, उतने तो बैठे ही हैं, जो नहीं दिखायी पड़ते हैं वे भी मौजूद हैं, और उनसे अभी तत्काल, अभी संबंध स्थापित किया जा सकता है। सिर्फ आपको 'रिसेप्टिव' होने की जरूरत है। कमरा बंद कर लें और तीन आदमी कमरे में सिर्फ आँख बंद करके, तीनों हाथ जोड़कर बैठ जाएँ और इतनी ही प्रार्थना कर लें कि इस कमरे में कोई आत्मा हो तो वह अपनी सूचनाएँ दे। आज जो सूचनाएँ उसको कह दें, वह देना शुरू कर देगी। आप इतना ही कह दें कि यह टेबल पर जो 'पेपर-वेट' रखा है, वह उछलकर जवाब देने लगे, तो आप दो-चार दिन में पाएँगे कि आपका 'पेपरवेट' उछलकर जवाब देने लगा। आप यह कह सकते हैं कि दरवाजे पर खटखट करके आवाज कर दे वह आत्मा, तो दरवाजे पर आवाज हो जाएगी। फिर इसको आप आगे बढ़ा सकते हैं। यह बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि आत्माएँ चौबीस घंटे चारों तरफ मौजूद हैं। और ऐसी आत्माएँ भी चारों तरफ मौजूद हैं जो हमेशा 'विलिंग' हैं, जो अगर आप कुछ कहें तो करने को सदा तत्पर हैं। जो बड़ी उत्सुक हैं कि आप किसी तरह का संबंध उनसे स्थापित करें। जो 'कम्यूनिकेशन' के लिए बड़ी आतुर हैं। जो कुछ कहना चाहती हैं, लेकिन उनको कहने का उपाय नहीं मिल रहा है। क्योंकि उनके और आपके बीच शरीर का ही 'कम्यूनिकेशन' का माध्यम था, वह टूट गया है और दूसरे माध्यम का हमें कोई पता नहीं है। इसमें अड़चन नहीं है। यह बहुत सीधी-सी, सरल-सी, प्रेतात्म-विद्या का हिस्सा है।

यह जो पूछा गया है कि क्या, जैसा कहा जाता है कि एक शरीर से आत्मा दूर जाकर वापस लौट आ सकती है? बिल्कुल ही लौट आ सकती

है। जा भी सकती है। क्योंकि शरीर से हमारा होना, शरीर में हमारा होना है। उससे बाहर की यात्रा सदा संभव है। उसके अपने मार्ग, अपनी विधियाँ हैं। शरीर के बाहर हुआ जा सकता है, यात्रा की जा सकती है, दूर तक जाया जा सकता है, वापस लौटा जा सकता है। कई बार आकस्मिक रूप से भी वैसा हो जाता है। जो आपको कुछ पता नहीं होता। ध्यान के किसी गहरे क्षण में आप अचानक कई बार ऐसा अनुभव कर पाएँगे कि आपको लगेगा आप शरीर के बाहर हो गये हैं और अपने ही शरीर को देख रहे हैं। फिर उस सबके विस्तार हैं, पर वह अलग बात है। उस पर कभी अलग ही हम इकट्ठे मिलें, तो प्रेतात्म-विद्या पर सारी बात की जा सकती है।

प्रश्न : भगवान श्री, रहस्य-विद्या के अतिरिक्त बौद्धिक स्तर पर भी आत्मा को समझने का और पुनर्जन्म का कोई प्रमाण है ? यानी दार्शनिक रूप से भी क्या हम इसे सिद्ध कर सकते हैं, बिना साधना में गये, कि आत्मा है और पुनर्जन्म होता है ?

प्रश्न : भगवान श्री, जो आत्मा होश में मरती है, उनको भी पता रहता है पूर्वजन्म का। इन प्रेतात्माओं को जो पता चलता है अपने पूर्वजन्म का, तो क्या ये सब होश में मरे हुए होते हैं ?

जो व्यक्ति मरता है, उसका सिर्फ शरीर ही मरता है, उसका चित्त नहीं मरता। उसका मन नहीं मरता, वह उसके साथ जाता है। और थोड़े समय तक, जैसे हम सुबह जब स्वप्न से जागते हैं तो थोड़े समय तक स्वप्न याद रहता है, दोपहर होते-होते तिरोहित हो जाता है। साँझ होते-होते कुछ याद नहीं रहती कि क्या स्वप्न था। जब लेकिन स्वप्न से हम एकदम उठते हैं तब स्वप्न का पिछला हिस्सा थोड़ा-सा हमें याद होता है, हालाँकि स्वप्न हमने बेहोशी में देखा है। स्वप्न हमने होश में नहीं देखा। लेकिन जब नींद टूटने के करीब होती है तो थोड़ा-सा होश आने लगता है। और उस होश में जितना स्वप्न का अंकन, जितने भी संस्कार छूट जाते हैं, वह

हमें जागने पर याद रहते हैं। लेकिन दोपहर होते-होते, दोपहर की धूप खिलते-खिलते वह सब विदा हो जाते हैं, साँझ को हमें कोई स्वप्न याद नहीं रह जाता।

प्रेतात्मा, जैसे ही कोई व्यक्ति शरीर को छोड़ता है, थोड़े समय तक— और यह प्रत्येक व्यक्ति की याददाश्त का समय भिन्न-भिन्न होगा—उसे थोड़े समय तक अपने स्वजन, अपने प्रियजन याद रहते हैं। इन स्वजन और प्रियजनों को मुलाने के लिए बहुत उपाय किये गये हैं। आदमी मरा नहीं कि हम उसकी लाश को तत्काल मरघट ले जाना चाहते हैं। हम उसकी 'आइडेंटिटी' को तत्काल नष्ट करना चाहते हैं। क्योंकि अब कोई अर्थ नहीं है कि वह हमें याद रखे। और यह शरीर जितनी देर रखा जा सके, उतनी देर तक वह हमें याद रख सकेगा, क्योंकि इसी शरीर के माध्यम से उसकी सारी स्मृतियाँ हमसे हैं। यह शरीर बीच का जोड़ है। इसको हम ले जाते हैं। एकदम से आदमी मरता है तो थोड़ी देर तक तो उसे पता ही नहीं चलता है कि मैं मर गया हूँ। क्योंकि भीतर तो कुछ मरता नहीं। थोड़ी देर तक तो उसे ऐसा ही अनुभव होता है कि क्या कुछ गड़बड़ हो गयी, शरीर अलग मालूम पड़ रहा है, मैं अलग हो गया हूँ ! हाँ, जो लोग ध्यान में गये हैं, उन्हें यह तकलीफ नहीं होती है, क्योंकि इस अनुभव से वह पहले गुजर गये होते हैं। मरने पर अधिकतम लोगों को बड़ी बिबूचन पैदा होती है। पहली बिबूचन यही पैदा होती है कि यह मामला क्या है ! यह लोग रो क्यों रहे हैं, यह चिल्ला क्यों रहे हैं कि मैं मर गया, क्योंकि मैं तो हूँ। सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि शरीर अलग पड़ा है जो मेरा था, और मैं जरा अलग मालूम पड़ रहा हूँ, और तो कुछ मर नहीं गया है।

इसी शरीर के माध्यम से हमारा सारा 'एसोसिएशन' है स्मृतियों का, इसलिए हम तत्काल मरघट ले जाते हैं और शरीर को जला देते हैं या गड़ा देते हैं। उस शरीर के टूटते ही उस आदमी के स्मृतियों के जाल हमसे एकदम विच्छिन्न हो जाते हैं। और जैसे स्वप्न से उठा आदमी थोड़ी देर

में स्वप्न भूल जाता है, ऐसा मृत्यु से उठा आदमी या जिसे हम जीवन कहते थे उससे उठा हुआ आदमी थोड़ी देर में सब भूल जाता है। वह कितनी देर में भूल जाता है उसके हिसाब से हमने दिन तय किये हैं। जिनकी स्मृति बहुत कमजोर हैं वे तीन दिन में भूल जाते हैं। जिनकी स्मृति बहुत अच्छी है, वह तेरह दिन में भूल जाते हैं। यह बहुत सामान्य हिसाब से तय किये हुए दिन हैं कि तीन दिन में भूल जाएंगे कि तेरह दिन में भूल जाएंगे, लेकिन यह आमतौर से है। लेकिन प्रगाढ़-से-प्रगाढ़ स्मृति का आदमी एक वर्ष में भूल जाता है। इसलिए एक वर्ष तक मृतक के कुछ संस्कार हम जारी रखते हैं। वह एक वर्ष तक हम उसके साथ थोड़ा-सा संबंध जारी रखते हैं, क्योंकि रह सकता है संबंध। लेकिन सामान्यतया ऐसा नहीं होता है। तीन दिन में सब टूट जाता है। कुछ का तो और भी जल्दी टूट जाता है। वह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर होगा। साल भर तक बहुत कम आत्माएँ बचती भी हैं आत्मा रूप में। बहुत जल्दी-शीघ्र नये जन्म ग्रहण कर लेती हैं।

होश में जो मरता है, वह तो कभी मरता ही नहीं, पहली बात। जो मरते वक्त पूरे होश में है, वह तो कभी मरता नहीं, क्योंकि वह जानता है सिर्फ शरीर छूटा। और जो इतने होश में है, उसका कोई न स्वजन है, न कोई प्रियजन है, न कोई पराया जन है। जो इतने होश में है, वह स्मृतियों के बोझ से लदता नहीं। जो इतने होश में है, उसकी तो बात ही नहीं है। और जो मृत्यु में होश से मरता है, वह अगले जन्म को होश से ले पाता है। जैसे मैंने कहा कि मृत्यु के बाद भी थोड़े दिन तक हमें स्मरण होता है जहाँ से हम आए, जन्म के बाद भी बच्चे को थोड़े दिन स्मरण होता है जहाँ से वह आया। वह प्रेतात्म-जीवन का जो अनुभव बीच में गुजरा, उसकी थोड़ी स्मृतियाँ उसके पास होती हैं। लेकिन वह धीरे-धीरे खो जाती हैं। और इसके पहले कि वाणी उसे उपलब्ध होती है, खो जाती हैं। कभी-कभी बहुत ही तीव्र स्मृतिवाले बच्चों को वे स्मृतियाँ शेष रह जाती हैं, जोकि उसके

बोलने के बाद भी जारी रहती हैं। वह 'रेयर' घटना है। स्मृति की बहुत ही अनुठी संभावना के कारण ऐसा होता है।

एक सवाल इस संबंध में पूछा गया है कि क्या रहस्यात्मक अनुभूति के अतिरिक्त भी पुनर्जन्म का कोई दार्शनिक प्रमाण है ?

दार्शनिक प्रमाण तो सिर्फ तार्किक होते हैं। तर्क के आधार पर होते हैं। और तर्क की एक खराबी है कि जितने वजन का तर्क पक्ष में दिया जा सकता है, ठीक उतने ही वजन का तर्क विपक्ष में दिया जा सकता है। तर्क जो है, उसको अगर ठीक से कहें तो जो जानते हैं वह तर्क को देश्या कहते हैं, वह किसी के भी साथ खड़ा हो सकता है। उसका कोई अपना निजी मंतव्य तर्क का नहीं है।

तो जिन लोगों ने तर्क और दर्शन से सिद्ध करने की कोशिश की है कि पुनर्जन्म है, उनके विपरीत ठीक उतने ही वजन के तर्कों से सिद्ध किया जा सका है कि पुनर्जन्म नहीं है। तर्क जो है वह 'सॉफिस्ट्री' है। 'सॉफिस्ट्री' का मतलब कि तर्क जो है वह वकील की तरह है। उसका कोई अपना कोई हिसाब नहीं है। किसने उसको किया हुआ है अपनी तरफ, उसकी तरफ वह बोलता है। वह अपनी पूरी ताकत लगाता है। इसलिए तर्क से कभी कोई निष्कर्ष निष्पन्न नहीं होता। बहुत निष्कर्ष निष्पन्न होते हुए मालूम होते हैं, होता कभी नहीं। क्योंकि ठीक विपरीत तर्क से उतना ही खंडन किया जा सकता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। असल में अगर तर्क इतने दूर तक पक्ष में जाता है तो उतनी ही दूर तक विपक्ष में जा सकता है। इसलिए दर्शन-शास्त्र कभी तय नहीं कर पाएगा कि पुनर्जन्म है या नहीं। बातें कर पाएगा। हजारों साल तक बातें कर पाएगा, लेकिन कुछ सिद्ध नहीं होगा।

तर्क के साथ एक और मजा है कि जिसे आप सिद्ध करते हैं, उसे आप पहले ही माने होते हैं। तर्क के साथ एक मजा है कि जिसे आप सिद्ध करते हैं, उसे आपने पहले ही माना होता है, तर्क तो आप पीछे उपयोग में करते हैं। 'एज्यूस' किया होता है, वह आपका 'प्री-सपोजीशन' होता है।

एक मित्र हैं, वे एक बड़े प्रोफेसर हैं और किसी विश्वविद्यालय में पुनर्जन्म पर खोज का कार्य करते हैं। कोई मुझे उनको मिलाने लिवा लाया। और उन्होंने मुझसे मिलते ही कहा कि मैं वैज्ञानिक रूपों से सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म है। तो मैंने उनसे कहा कि यह तो फिर वैज्ञानिक न हो पाएगा, क्योंकि क्या सिद्ध करना चाहते हैं यह आपने पहले ही पक्का किया हुआ है। वैज्ञानिक का मतलब यह होता है कि आप ऐसा कहिये कि मैं जानना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म है या नहीं। आप कहते हैं, मैं सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म है। तो सिद्ध होना तो पहले ही है आपके मन में। पुनर्जन्म है, यह तो पक्का ही है। अब रह गया यह कि दलीलें इकट्ठी करनी हैं, तो दलीलें इकट्ठी की जा सकती हैं। एक आदमी सिद्ध करना चाहता है कि पुनर्जन्म नहीं है। यह तो पक्का ही है। अब रह गयीं दलीलें, दलीलें इकट्ठी की जा सकती हैं। और यह जगत इतना अद्भुत है और इतना जटिल है कि यहां सब तरह के पक्षों के लिए दलीलें उपलब्ध हो जाती हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

दर्शन कभी सिद्ध नहीं कर पाएगा कि पुनर्जन्म है या नहीं है। तो आपके सवाल को थोड़ा और हटा कर कहें। ऐसा पूछें कि क्या विज्ञान कुछ कह सकता है कि पुनर्जन्म है या नहीं ?

दर्शन तो कभी नहीं कह पाएगा। वह कह रहा है पाँच हजार साल से, उससे कुछ हल नहीं होता। जो मानते हैं, है, वह माने चले जाते हैं। जो मानते हैं, नहीं है, वह नहीं माने चले जाते हैं। और है वाला कभी नहीं है वाले को 'कनविस' नहीं कर पाता। नहीं है वाला कभी है वाले को 'कनविस' नहीं कर पाता। यह बड़े मजे की बात है कि जो 'कनविस' पहले से ही नहीं है वह कभी 'कनविस' होता ही नहीं। तर्कों के साथ तर्कों की यह नपुंसकता है, तर्कों की यह 'इम्पोर्टेंस' है कि आप सिर्फ उसी को 'कनविस' कर सकते हैं जो 'कनविस' था ही। अब इसका कोई मतलब ही नहीं है। एक हिंदू को आप 'कनविस' कर सकते हैं कि पुनर्जन्म है,

क्योंकि वह 'कनविस्ड' है। एक मुसलमान को 'कनविस' करने जाइए तब पता चलता है। एक ईसाई को आप 'कनविस' कर सकते हैं कि पुनर्जन्म नहीं है, एक हिंदू को 'कनविस्' करने जरा जाइए तो पता चलता है। जो पहले से ही राजी है किसी सिद्धांत के लिए, तर्क बस उसी के लिए खेल कर पाता है और कुछ नहीं कर पाता है। नहीं, सवाल को कुछ और तरह से पूछिये। सवाल को ऐसा पूछिये कि क्या वैज्ञानिक ढंग से कुछ कहा जा सकता है कि पुनर्जन्म है या नहीं ?

हाँ, विज्ञान कोई पक्ष लेकर नहीं चलता। दर्शन पक्ष लेकर चलता रहता है, तर्क पक्ष लेकर चलता रहता है। असल में वैज्ञानिक चित्त का मतलब ही यह है कि जो निष्पक्ष है और जिसके लिए दोनों 'आल्टरनेटिव' खुले हुए हैं, जिनसे अभी 'क्लोज़' नहीं किया। जो कहता है कि यह भी हो सकता है, वह भी हो सकता है, हम खोजने चलते हैं। तो विज्ञान ने जबसे खोज करना शुरू किया है—ज्यादा देर नहीं हुई, अभी थोड़े ही दिन हुए। कोई पचास साल, जब यूरोप और अमरीका में 'साइकिक सोसाइटीज़' निर्मित हुईं और उन्होंने थोड़ा-सा काम करना शुरू किया। अभी कोई पचास साल ही हुए जबकि कुछ थोड़े से बुद्धिमान लोग, जिनके पास वैज्ञानिक की बुद्धि है—रहस्यवादी का नहीं सवाल, रहस्यवादी तो बहुत दिन से कहता है कि है और रहस्यवादी लेकिन प्रमाण नहीं दे पाता, क्योंकि वह कहता है मैं जानता हूँ; तुम भी जान सकते हो, लेकिन मैं तुम्हें नहीं जना सकता। तो रहस्यवादी कहता है कि मेरे सिर के दर्द जैसा है, मुझे पता है कि है। तुम्हारे सिर में दर्द होगा, तुम्हें पता चल जाएगा। लेकिन मेरे सिरदर्द का पता तुम्हें नहीं चल सकता। और मैं कितनी ही चेहरे की आकृतियाँ बनाऊँ, छाती पीटकर रोऊँ, तुम फिर भी कह सकते हो कि पता नहीं, बनकर कह रहे हो कि सच में दर्द हो रहा है? इसको हमेशा कहा जा सकता है।

पिछले पचास वर्षों में यूरोप में कुछ थोड़े-से लोग हुए—ओलिवर

लाज, ब्राँड, राइन—और इन सारे लोगों ने कुछ दिशाएँ खोजनी शुरू कीं। ये सारे वैज्ञानिक चित्त के लोग हैं, जिनकी कोई मान्यता नहीं है। इन्होंने कुछ काम करना शुरू किया है, वह काम धीरे-धीरे प्रामाणिक होता जा रहा है। इन्होंने जो काम किया है, उसकी निष्पत्तियाँ गहरी हैं; और उसकी निष्पत्तियाँ पुनर्जन्म होता है, इस दिशा में प्रगाढ़ होती जाती हैं; नहीं होता है, इस दिशा में क्षीण होती जाती हैं। जैसे एक तो प्रेतात्माओं से संबंध स्थापित किए जा सके हैं बड़े तरकीबों से, बड़ी व्यवस्थाओं से और सब तरह के वैज्ञानिक ढंगों से कोशिश की जा सकी है कि कोई धोखा नहीं है। बहुत-से मामले धोखे के सिद्ध हुए हैं। लेकिन उनका कोई सवाल नहीं है। अगर एक मामला भी धोखे का सिद्ध नहीं होता, तो भी प्रामाणिक है।

तो प्रेतात्माओं से संबंध स्थापित किए गए हैं वैज्ञानिक ढंग से और उन संबंधों के आधार पर सूचना मिलनी शुरू हो गयी कि आत्मा शरीरों को बदलती है। कुछ 'साइकिक सोसाइटीज़' के सदस्यों ने जिन्होंने जिदगी भर काम किया, मरते वक्त वह वायदा करके गये कि मरने के बाद हम पूरी कोशिश करेंगे सूचना देने की। उसमें दो-एक लोग सफल हो सके। और मरने के बाद उन्होंने कुछ निश्चित सूचनाएँ दीं, जिनका वायदा उन्होंने मरने के पहले किया था। उनसे कुछ प्रमाण इकट्ठे हुए हैं।

और, मनुष्य के व्यक्तित्व में कुछ और नयी दिशाओं का अनुभव, जैसे 'टेलीपैथी' का 'क्लरवायंस' का, दूर-श्रवण का, दूर-दृष्टि का और दूर-संवाद का, इस पर काफी काम हुआ है। हजार मील दूर बैठे हुए आदमी को भी मैं यहाँ बैठकर संदेश भेज सकता हूँ, बिना किसी बाह्य उपकरण का उपयोग किये। तब इसका मतलब यह होता है कि शरीर ही नहीं, अशरीरी ढंग से भी संवाद संभव है।

(बीच में प्रश्न) : वह मन ही हो, आत्मा न हो, इसकी भी तो संभावना है !

उसकी बात करते हैं। वह मन भी हो, तो भी शरीर से भिन्न कुछ होना शुरू हो जाता है। और शरीर से भिन्न होना एक बार विज्ञान के ख्याल में आना शुरू हुआ, तो बहुत दूर नहीं है आत्मा का होना। क्योंकि भगड़ा जो है वह यही है कि शरीर से भिन्न भीतर कुछ है? एक बार इतना भी तय हो जाए कि शरीर के भीतर शरीर से भिन्न मन भी है, तो भी यात्रा शुरू हो गयी। और विज्ञान की यात्रा ऐसे ही शुरू होगी। पहले मन ही होगा, फिर धीरे-धीरे ही हम आत्मा तक विज्ञान को ले जा सकें, इशारे करवा सकें। लेकिन मन है।

अभी एक आदमी है, टेड नाम का एक व्यक्ति है। जिसके बड़े अनूठे अनुभव 'साइकिक सोसाइटीज' में हुए हैं। अनूठे अनुभव उसके यह हैं कि वह आदमी अगर न्यूयार्क में बैठा है, उसने मुझे कभी नहीं देखा, मेरा कोई चित्र नहीं देखा, मेरे संबंध में कभी सुना नहीं, लेकिन आप अगर उससे कहें कि मेरे संबंध में सोचे, विचार करे, तो वह आँख बंद कर लेगा और वह मेरे संबंध में ध्यान करेगा और जब आधा घंटे बाद वह आँखें खोलेगा, तो उसकी आँख में से मेरा चित्र उतारा जा सकता है। उसकी आँख से, कैमरा उसकी आँख से मेरा चित्र उतार लेगा। और इस तरह के हजारों चित्र उतारे गये हैं और फिर मेरे असली चित्र से जब मिलाया जाता है तब बड़ी हैरानी होती है। करीब-करीब, बस 'फेंटनेस' का फर्क होता है, इससे ज्यादा फर्क नहीं होता। इतना साफ नहीं होता, लेकिन होता यही है।

इसका मतलब क्या है?

इसका मतलब यह है कि उसकी आँख किसी-न-किसी तरह मुझे देखने में समर्थ हो गयी है। न केवल देखने में समर्थ हो गयी है, बल्कि जैसा मेरे सामने आप मुझे देखें तो आपकी आँख में मेरा चित्र बनता है, ऐसे ही हजारों मील फासले पर अज्ञात अपरिचित आदमी का चित्र भी उसकी आँख में बन गया है। इसके हजारों प्रयोग हुए हैं और हजारों चित्र

हजारों तरह के उस आदमी की आंख में पकड़े गए हैं।

‘टेलीपैथी’ के तो बहुत प्रयोग हो गये हैं। और अभी चूँकि ‘स्पेस ट्रेवल’ शुरू हुई, और चाँद पर जाना है—चाँद पर तो हम चले गये—कल मंगल पर जाना है, और फिर लंबी यात्राएँ शुरू होंगी, जिनमें यात्री वर्षों के लिए जाएँगे और वर्षों बाद लौटेंगे। मंगल पर भी एक वर्ष लगेगा आने-जाने में। इस एक वर्ष की लंबी यात्रा में अगर यंत्रों ने जरा-सी भी चूक कर दी, तो फिर हमें उन यात्रियों से कभी कोई संबंध नहीं हो सकेगा कि वे कहाँ गये और क्या हुआ ! बचे कि नहीं बचे ! अनंत काल तक फिर हमें उनका कोई पता नहीं चलेगा। वे हमसे किसी तरह का ‘कम्यूनिकेशन’ नहीं कर पाएँगे। इसलिए रूस और अमरीका दोनों, जहाँ अंतरिक्ष की यात्रा पर गहन शोध चलती है, ‘टेलीपैथी’ में उत्सुक हो गये हैं। क्योंकि अगर किसी दिन स्पेस यात्री का यंत्र खराब हो जाए और वह रेडियो यंत्रों के द्वारा हमें खबर न दे पाए, तो ‘टेलीपैथी’ से खबर दे सके। एक ‘आल्टरनेटिव’ चाहिए। नहीं तो, यंत्रों का कोई भरोसा ही नहीं है। ...इधर हम ‘आल्टरनेटिव’ रखे हैं न, यह बैटरी सेट रखे हुए हैं। यंत्र का कोई भरोसा नहीं है। वह कभी भी...

लेकिन अभी साधारण यंत्र का भरोसा न भी हो तो कोई खतरा नहीं है, लेकिन यात्री जो अंतरिक्ष यंत्र में गया है, अगर उसके यंत्र हमें खबर न दे पाएँ, या हम उसे खबर न दे पाएँ, हमारा संबंध एक बार टूट जाए, तो फिर हमें कुछ पता नहीं चलेगा कि वह कहाँ गया ? है भी अब जगत में या नहीं है ? वह अश्वत्थामा की कथा हो जाएगी, उसका फिर कभी पता नहीं चलेगा। वह फिर कभी मरेगा भी नहीं। उसके बावत हम फिर कुछ भी नहीं जान सकेंगे, कभी। तो वह कोई खबर दे सके यंत्र के अतिरिक्त। इसलिए रूस और अमरीका दोनों ही ‘टेलीपैथी’ में भारी उत्सुक हैं। और दोनों ने गहरे प्रयोग किये हैं।

रूस में एक आदमी है फयादेव। उस आदमी ने हजारों मील दूर तक

संदेश पहुँचाने का प्रयोग सफलता से किया है। बैठकर वह संदेश भेजेगा किसी व्यक्ति विशेष को और उस व्यक्ति विशेष को उसके भीतर से संदेश आता हुआ मालूम पड़ेगा।

तो विज्ञान धीरे-धीरे आदमी शरीर ही नहीं है, उसके भीतर कुछ अशरीरी भी है, इस दिशा में कदम उठा रहा है। और एक बार यह तय हो जाए कि आदमी के भीतर कुछ अशरीरी भी है, तो पुनर्जन्म का द्वार खुल जाएगा। दर्शन से जो नहीं संभव हो सका, रहस्यवादी जो संभव नहीं कर सके सबको समझाना, वह विज्ञान संभव कर पाएगा। वह संभव हो सकता है। वह होता जा रहा है।

प्रश्न : भगवान श्री, ऐसा प्रयोग हुआ है कि ग्लॉस कास्केट में मरते हुए आदमी को सुलाया गया। इस पर आप कुछ कहने जैसा मानते हैं ?

ऐसा प्रयोग बहुत जगह करने की कोशिश की गयी, लेकिन परिणामकारी नहीं हुआ। ऐसा ख्याल है—स्वाभाविक है, क्योंकि विज्ञान जब सोचता है तो पदार्थ की भाषा में सोचता है—अगर एक आदमी मरता है और शरीर के अतिरिक्त कुछ और है और वह निकल जाता है, तो 'वेट' कम हो जाना चाहिए। लेकिन यह हो सकता है कि जो निकल जाता है वह 'वेटलेस' हो। उसका 'वेट' होना ही चाहिए ! या वह इतने कम 'वेट' का हो कि हमारे पास कोई मानदंड न हो। जैसे कि सूरज की किरणें हैं, इसमें कोई 'वेट' है ? है 'वेट'। सूरज की किरणें हैं ये। इनको तराजू पर तोलिये। एक तराजू पर अँधेरा रखिये, एक पलड़े पर रोशनी रखिये। उसको थोड़ा नीचे जाना चाहिए, अगर सूरज की किरणें हैं। वह नहीं जाता। सूरज की किरणें नहीं होनी चाहिए, क्योंकि 'वेट' नहीं है। लेकिन उनमें 'वेट' है। अगर एक वर्गमील की सब सूरज किरणें इकट्ठी की जाएँ, तो एक तोले का 'वेट' देती हैं। लेकिन वह बड़ा मुश्किल मामला है ! अब कितनी आत्मा में कितना 'वेट' होगा, अभी देर है।

तो वह जो प्रयोग किया गया, प्रयोग कई जगह किया गया, क्योंकि

स्वाभाविक हमारा ख्याल है कि आदमी मरता है, तो मरते आदमी को काँच के कास्केट में बंद कर दिया सब तरफ से, कोई रंध्र, द्वार नहीं रहने दिया, वह मर गया ! जितना वजन जिंदा में था उससे कुछ तो कम हो ही जाना चाहिए, अगर कुछ उसमें से निकल गया, एक। दूसरा, जो निकला है, उसके निकलने के लिए भी काँच टूट जाना चाहिए, क्योंकि कोई रंध्र, द्वार नहीं है। मगर दोनों संभव नहीं हुए। न तो काँच टूटा, क्योंकि सभी चीजों के निकलने के लिए काँच बाधा नहीं है। सूरज निकल जाता है, किरणें निकल जाती हैं। हड्डी और लोहा भी बाधा नहीं है, 'एक्स-रे' की किरण निकल जाती है। तो आदमी को क्यों झंझट डालते हो कि उसको निकलने को कोई चीज तोड़नी पड़े। अब 'एक्स-रे' की किरण आपकी हड्डी और छाती के भीतर चली जाती है, हड्डी को पार करके चित्र ले आती है और कहीं कुछ टूटता नहीं, कहीं कोई छेद नहीं हो जाता। तो जब 'एक्स-रे' की बहुत स्थूल किरण भी काँच को बिना तोड़े, हड्डी को बिना तोड़े, लोहे की सीखचों को बिना तोड़, लोहे की दीवाल को पार कर लेती है, तो आत्मा को ही कौन-सी कठिनाई हो सकती है। 'लाजिकली' कोई कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। और जगत में बहुत कुछ 'वेटलेस' है। असल बात यह है कि जिसको हम 'वेट' कहते हैं, वह बहुत गहरे में हम समझें तो 'वेट' नहीं है, सिर्फ 'ग्रेवीटेशन' है। मगर इसको जरा गणित की तरह समझना पड़ेगा।

आपका वजन है यहाँ समझ लीजिए कि चालीस किलो, तो चाँद पर आपका वजन चालीस किलो नहीं होगा। आप बिल्कुल यही होंगे। चाँद पर आपका वजन आठ गुना कम हो जाएगा। इसलिए आप अगर यहाँ छः फीट ऊँचे कूद सकते हैं, तो चाँद पर आठ गुना ज्यादा कूद सकेंगे। क्योंकि चाँद की जो कशिश है, 'ग्रेवीटेशन' है, वह पृथ्वी से आठ गुना कम है। और सब वजन जमीन के खिंचाव का वजन है। अब यह हो सकता है कि जमीन आत्मा को न खींच पाती हो। यह कोई जरूरी नहीं है कि 'ग्रेवी-

टेशन' जो है वह आत्मा को खींचता हो। तो फिर वजन नहीं होगा। अगर हम कभी किसी दिन ऐसी जगह बना लें जो 'नॉन-ग्रेवीटेशनल' हो, वहाँ किसी का वजन नहीं होगा।

चाँद पर भी जो यात्री जा रहे हैं, उनको जो सबसे महँगा और खतरनाक अनुभव होता है, वह 'वेटलेसनेस' का है। जैसे ही पृथ्वी का घेरा छूटता है—दो सौ मील तक पृथ्वी खींचती है, दो सौ मील तक पृथ्वी की 'ग्रेवीटेशनल फील्ड' है, दो सौ मील तक पृथ्वी की कशिश आदमी को खींचती है, दो सौ मील के बाद पृथ्वी का घेरा समाप्त हो जाता है—उसके बाद आदमी एकदम 'वेटलेस' हो जाता है। इसलिए अन्तरिक्ष में जाने वाले यात्री को अगर जरा भी उसका पट्टा छूट गया जो कमर से बँधा है, तो वह फुगों की तरह यान में लटकेगा। फुगों की तरह वह, सिर उसका ऊपर जाकर यान के छत से लग जाएगा। और फिर उसको नीचे आना बड़ा मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि नीचे 'ग्रेवीटेशन' के बिना आना बहुत मुश्किल है, उसको खींचना पड़ेगा।

तो आत्मा पर 'ग्रेवीटेशन' लागू होता ही हो तो, तो ये प्रयोग ठीक हैं, पेरिस या कहीं भी किये जाते हैं, अन्यथा ठीक नहीं हैं। मेरी अपनी समझ यह है कि पदार्थ पर जो नियम काम करते हैं, वह पदार्थ की सघनता के कारण ही करते हैं। आत्मा को अगर हम ठीक से समझें तो विरलता की अन्त है वह। इसलिए उस पर कोई नियम काम नहीं करते। वह नियम के बाहर हो जाती है। और जब तक हम नये नियम से उस पर खोजनें नहीं जाते, जब तक हम पदार्थ के नियमों को ही आधार बनाकर आत्मा के संबंध में खोज करते रहेंगे, तब तक विज्ञान का उत्तर आत्मा के संबंध में इनकार का रहेगा। वह कहेगा, नहीं है। लेकिन यह जो 'साइकिक सोसाइटीज' की मैंने बात की, यह जो राइन और मायसं के प्रयोग की मैंने बात की, यह जो ओलिवर, लाज और ब्राँड की चर्चा की, ये सारे लोग विज्ञान की प्रतिष्ठित पदार्थ को नापने की पद्धति को छोड़कर आत्मा के अज्ञात माप-

दंडों की खोज कर रहे हैं। इनसे आशा बँधती है कि कुछ सूत्र धीरे-धीरे निःसृत होंगे और विज्ञान उस बात की गवाही दे पाएगा, जिस बात की गवाही रहस्यवादियों ने सदा से दी है लेकिन प्रमाण नहीं दे पाए हैं।

प्रश्न : आपने कहा कि अर्जुन कृष्ण के प्रति समर्पित हुए इसलिए यंत्र-वत न होकर स्वतंत्र हुए। विवेकानन्द रामकृष्ण के प्रति समर्पित होकर भी यंत्रवत रहे, आत्मवान न हो पाए, इसका क्या कारण है ?

इसके कारण हैं। रामकृष्ण और विवेकानन्द के बीच का जो संबंध है, पहली तो बात गुरु और शिष्य के बीच का संबंध है। कृष्ण और अर्जुन के बीच जो संबंध है, वह गुरु-शिष्य का संबंध नहीं। दूसरी बात, कृष्ण की पूरी चेष्टा अर्जुन के द्वारा जगत को कोई संदेश पहुँचाने की नहीं है, अर्जुन को ही संदेश देने की है। रामकृष्ण की चेष्टा विवेकानन्द को संदेश देने की नहीं, विवेकानन्द के द्वारा जगत तक संदेश पहुँचाने की है। कृष्ण को तो पता भी नहीं है कि वह जो कह रहे हैं वह गीता बन जाएगी। यह आकस्मिक घटना है कि वह बन गयी। कृष्ण ने तो सहज ही युद्ध के स्थल पर खड़े होकर कहा होगा। यह तो पता भी नहीं होगा कि यह वक्तव्य जो है, इतना कीमती हो जाएगा और सदियों तक आदमी इस पर सोचेंगे। यह कहा तो गया था सिर्फ अर्जुन के लिए निपट, उसके सोचने के लिए था। यह नहीं था कि यह दुनिया को जाकर कहेगा। यह अर्जुन को ही बदलने के लिए थी यह खबर। यह उसके लिए ही था निपट। यह बड़ी 'इंटीमेट' चर्चा थी। यह दो व्यक्तियों के बीच सहज व्यक्तिगत बातचीत थी। और मेरा अपना अनुभव यह है कि इस जगत में जितना भी महत्वपूर्ण है, वह सदा 'इंटीमेट डायलॉग' है। सदा। इसलिए लिखनेवाला कभी उस गहराई को उपलब्ध नहीं होता जो बोलनेवाला उपलब्ध होता है। इसलिए दुनिया में जो भी श्रेष्ठ है, वह बोला गया है।

इधर आप सुबह हम बात करते थे—अरविन्द ने कुछ भी नहीं बोला है, सब लिखा है। कृष्ण ने, क्राइस्ट ने, बुद्ध ने, महावीर ने, रामण ने, कृष्ण-

श्रुति ने सब बोला है। बोलने का माध्यम 'पर्सनल' है, लिखने का माध्यम 'इमपर्सनल' है। लिखते हम किसी के लिए नहीं—पत्रों को छोड़कर। बाकी सब हम किसी के लिए नहीं लिखते। कौन है 'रिसीवर' उसका कोई पता नहीं होता। 'एब्सट्रैक्ट' है। लेकिन बोलने का माध्यम तो बड़ा व्यक्तिगत है, निजी है—हम किसी से बोलते हैं। तो कृष्ण तो अर्जुन से बोल रहे हैं सीधे। जगत का कोई सवाल नहीं है यहाँ। यहाँ दो मित्रों के बीच एक बात हो रही है। रामकृष्ण के साथ स्थिति और है। और कारण है स्थिति का। जैसा मैंने सुबह कहा, उसे थोड़ा ख्याल में लेंगे तो समझ में आ जाएगा।

रामकृष्ण को अनुभव तो हुआ, लेकिन रामकृष्ण के पास वाणी वित्कुल नहीं थी। और रामकृष्ण को जीवन भर यही पीड़ा थी कि कोई मुझे मिल जाए जो वाणी दे दे। जो वह जानते थे, वह बोल नहीं सकते थे। रामकृष्ण एकदम अशिक्षित, अपढ़, शायद दूसरी बंगाली क्लास पता नहीं पास कि फेल। इतना उनका शिक्षण है। जान तो लिया उन्होंने बहुत, लेकिन इसको कहें कैसे! इसके लिए उनके पास शब्द नहीं, सुविधा नहीं, व्यवस्था नहीं। तो कोई चाहिए जिसके पास शब्द हो, सुविधा हो। व्यवस्था हो। विवेकानन्द के पास तर्क है, वाणी है, अभिव्यक्ति है। रामकृष्ण के पास अनुभव है, तर्क नहीं है, वाणी नहीं है, अभिव्यक्ति नहीं है। रामकृष्ण के जो वक्तव्य भी हमें उपलब्ध हैं आज, वे बहुत काट-छाँटकर और सुधार कर किये गये हैं। क्योंकि रामकृष्ण तो देहाती आदमी थे, वह बोलने में गाली भी दे देते थे। गाली भी बक देते थे। वह तो देहात के आदमी थे! जैसा देहात में सहज आदमी बोलता है वैसा बोलते थे। वह सब गालियाँ काटनी पड़ीं। मैं तो नहीं मानता कि ठीक हुआ, उनको होना चाहिए। 'अथैटिक' होनी चाहिए 'रिपोर्ट'। जो उन्होंने कहा था वैसी होनी चाहिए थी। ठीक है, वह देते थे गाली, इसकी क्या बात है! और गाली ऐसी क्या बुरी है, होना चाहिए वहाँ। लेकिन हमारे मन में डर लगेगा कि साधु और

गाली दे रहा हो, परमहंस ! उसको अलग कर दें । इसलिए बहुत काट-छाँटकर रामकृष्ण को पेश करना पड़ा है ।

रामकृष्ण के पास संदेश के लिए कोई सुविधा नहीं थी । इसलिए राम-कृष्ण बिल्कुल गुंगे थे । विवेकानन्द जब रामकृष्ण के पास आए तो राम-कृष्ण को आशा बैंधी कि यह व्यक्ति जो मेरे भीतर घटा है उसे दुनिया तक कह सकेगा । इसलिए विवेकानन्द को 'इंस्ट्रूमेंट' बनना पड़ा ।

और एक घटना आपको कहूँ जिससे ख्याल में आ जाए ।

विवेकानन्द को समाधि की बड़ी आकांक्षा थी । तो रामकृष्ण ने उन्हें समाधि का प्रयोग समझाया, करवाया । रामकृष्ण महिमाशाली थे, उनकी मौजूदगी भी किसी के लिए समाधि बन सकती थी । उनके स्पर्श से भी बहुत कुछ हो सकता था । उतना जीवंत व्यक्तित्व था । जिस दिन पहली दफे विवेकानन्द को समाधि का अनुभव हुआ, विवेकानन्द ने क्या किया ? उस आश्रम में कालू नाम का एक आदमी था । वह दक्षिणेश्वर के मंदिर के पास ही रहता था । बहुत भोला-भाला आदमी था । मंदिरों के पास जब तक भोले-भाले आदमी रहें, तभी तक मंदिरों की सुरक्षा है । जिस दिन वहाँ चालाक आदमी पहुँचते हैं उस दिन तो सब खराब हो जाता है । वह कालू बड़ा भोला-भाला आदमी था । उसको दिन-भर पूजा में लग जाता था, क्योंकि उसके कमरे में जमाने भर के देवी-देवता थे—एकाध-दो नहीं थे । जो भी देवी-देवता मिलते थे, कालू उनको ले आते थे । उसके कमरे में कालू के लिए जगह ही नहीं बची थी, वह बाहर सोते थे । जो भी आदमी भगवान के चक्कर में पड़ेगा, एक दिन बाहर सोना पड़ेगा, क्योंकि भगवान भीतर सब जगह घेर लेता है । तो वह इतनी दिक्कत में पड़ गया था कि उसके पास सैकड़ों भगवान थे । तरह-तरह के भगवान थे । जहाँ जो भगवान मिले, ले आए । अब वह सुबह से पूजा शुरू करता तो साँझ हो जाती, क्योंकि सभी की पूजा करनी पड़ती थी ।

विवेकानन्द ने उसे कई दफे समझाया कि कालू, तू बड़ा नासमझ है,

फेंक इन सबको । भगवान तो अदृश्य है । वह तो सब जगह मौजूद है । वह कहता होगा, पहले हम अपने कोठे से निपट लें । बाकी वह बेचारा सीधा-सादा आदमी था । विवेकानन्द ने बहुत उसको तर्क दिये । लेकिन सीधे-सादे आदमी को तर्क भी नहीं दिये जा सकते । वह हँसता था, वह कहता था ठीक कहते हो, लेकिन अब जिनको ले ही आए, अब इनका स्वागत-सत्कार तो करना ही पड़ेगा । कई दफे उसको कहा कि फेंक, ये कहां के अत्थर-पत्थर इकट्ठे कर रखे हैं—कहीं छोटे शंकर, बड़े शंकर, न मालूम क्या-क्या, यह क्या तूने किया है ? और दिन-भर इसी में गँवाता है, किसी को टीका लगाता है, कभी घंटा बजाता है, तेरा समय इसमें जाया हो रहा है । वह कालू कहता कि औरों का समय जिसमें जाया हो रहा है, मेरा इसमें जाया हो रहा है, और तो कोई खास फर्क नहीं पड़ रहा है । बाकी हर्ज क्या रहेगा अखीर में !

जिस दिन विवेकानन्द को पहली दफा समाधि लगी, अचानक भीतर शक्ति की ऊर्जा का जन्म हुआ और विवेकानन्द को जो पहला ख्याल आया वह यह आया कि अगर इस ऊर्जा के क्षण मैं कह दूँ कालू को कि फेंक अपने भगवानों को, तो रोक नहीं सकेगा । 'टेलीपैथिक' हुआ । उन्होंने ऐसा सोचा, उधर बेचारे कालू, सीधे-सादे आदमी को संदेश मिल गया । उसने बाँधी पोटली अपने सब भगवानों की और चला गंगा की तरफ फेंकने । यह तो मन में ही सोचा था विवेकानन्द ने, यह तो अपने कमरे में बंद थे, लेकिन जब ऊर्जा जगी—तो यह समझ ही लेना कि जब ऊर्जा जगे, तो भूल कर भी उसका उपयोग मत करना । अन्यथा भारी नुकसान होता है । उसे जगने देना, बस उसका जगना ही उसका उपयोग है । उसका कोई उपयोग मत करना । विवेकानन्द ने तत्काल उपयोग किया और जिस कालू को वह तर्क से नहीं समझा सके थे, उसके साथ पीछे के रास्ते से उपद्रव किया । उनको ख्याल भी नहीं था, उन्होंने सिर्फ यह सोचा ही कि अगर इस वक्त मैं कालू को कह दूँ कि उठ कालू और फेंक सब, तो इतनी ऊर्जा मेरे भीतर है कि

अब कालू बच नहीं सकेगा। यह उन्होंने सोचा ही। उधर कालू अपना पूजा-मूजा कर रहा था, उसने सब पोटली बाँधी, सब भगवानों को कंधे पर टांग कर वह बाहर निकला। रामकृष्ण ने उसे कहा कि पागल, अंदर ले जा। उसने कहा कि सब बेकार है। रामकृष्ण ने कहा, कालू, यह तू नहीं बोलता है। यह कोई और बोल रहा है। तू भीतर चल। मैं उसको देखता हूँ शैतान को जो बोल रहा है।

वह भागे गये, दरवाजा तोड़ा और विवेकानन्द को हिलाया और कहा कि बस; यह तुम्हारी आखिरी समाधि हुई, अब आगे तुम्हें समाधि की अभी जरूरत नहीं है। और यह कुंजी मैं अपने पास रखे लेता हूँ। यह तुम्हारी समाधि की चाबी मैं अपने पास रखे लेता हूँ। मरने के तीन दिन पहले लौटा दूंगा। विवेकानन्द बहुत चिल्लाए और रोए कि आप यह क्या करते हैं, मुझे समाधि दें। रामकृष्णने कहा कि अभी तुझसे और बहुत काम लेने हैं। अभी तू समाधि में गया तो बिल्कुल चला जाएगा। और वह काम जो चाहिए वह नहीं हो पाएगा। अभी तुझे जो मैंने जाना है वह सारी दुनिया तक पहुँचाना है। और तू मोह मत कर और तू स्वार्थी मत बन। तुझे एक ऐसा वृक्ष बनना है, वट वृक्ष, जिसके नीचे हजारों लोगों को विश्राम मिल सके और छाया मिल सके। इसलिए तेरी चाबी अपने पास रखे लेता हूँ। वह चाबी पास रख ली गयी। मरने के तीन दिन पहले यह विवेकानन्द को वापिस मिली। मरने के तीन दिन पहले उनको दुबारा समाधि उपलब्ध हुई।

लेकिन इसमें जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह कि जिस समाधि की चाबी रखी जा सके, वह समाधि 'साइकिक' से ज्यादा नहीं हो सकती। जो समाधि किसी दूसरे के हाँ या ना कहने पर निर्भर हो, वह गहरे मनस से ज्यादा नहीं हो सकती, मनस-पार नहीं हो सकती। मन के पार की नहीं हो सकती। और जिस समाधि में कालू को मूर्तियाँ फेंकने का ख्याल आ जाए, वह समाधि बहुत आत्मिक नहीं हो सकती। उसका कोई कारण नहीं

है आने का ।

तो विवेकानन्द को जो समाधि घटी, वह मानसिक है । शरीर से बहुत ऊपर है, लेकिन आत्मा से बहुत नीचे है । और फिर रामकृष्ण की जो तकलीफ थी, उसकी वजह से विवेकानन्द को रोकना जरूरी था कि वह और गहरे न चले जाएँ, अन्यथा कौन उस संदेश को लेकर जाता । आज रामकृष्ण को हम जानते हैं तो सिर्फ विवेकानन्द की वजह से । लेकिन विवेकानन्द को बड़ी कुर्बानी करनी पड़ी । लेकिन इस विराट जगत के लिए वैसी कुर्बानी अर्थपूर्ण है । और रामकृष्ण को विवेकानन्द को रोकना पड़ा 'साइकिक' पर कि वह आगे न चले जाएँ, अन्यथा फिर विवेकानन्द को राजी नहीं किया जा सकता था । और रामकृष्ण की दुविधा यही थी कि बुद्ध को जो दोनों एक साथ मिले हैं, वह रामकृष्ण को—अकेले हैं वह, जानना तो मिल गया है, बताना नहीं है उनके पास । वह उसे नहीं बता सकते । इसलिए किसी और आदमी के कंधे का सहारा लेना पड़ा । रामकृष्ण विवेकानन्द के कंधों पर बैठ कर ही यात्रा किये हैं । इसलिए इसमें मैं मानता हूँ कि विवेकानन्द 'इंस्ट्रूमेंट' बने, बनाये गये । लेकिन कृष्ण अर्जुन को 'इंस्ट्रूमेंट' नहीं बना रहे हैं । कोई बात ही नहीं है उसमें, वह सिर्फ कह रहे हैं जो है । उसको प्रकट कर रहे हैं ।

फिर अब हम ध्यान के लिए बैठें ।

सोलहवाँ प्रवचन

सीखने की सहजता के प्रतीक कृष्ण

3 अक्टूबर 1970, प्रातः; मनाली (कुल्लू)

1921

THE STATE OF NEW YORK
IN SENATE
JANUARY 1, 1921.

प्रश्न : अरविंद को कृष्ण-दर्शन हुए । वे योगी लेले के संपर्क में भी तो आए थे । और पांडिचेरी के प्रयोग का निर्णय क्या भविष्य की पीढ़ियाँ ही नहीं करेंगी ?

ऐलिसबेली के विषय में आपका क्या ख्याल है, जब उसका कहना है कि उसे संदेश मिलते हैं । ये संदेश कौन देता है, कैसे देता है ? क्या आपका भी ऐसे किसी मास्टर या गुरु से संबंध है ?

अरविंद का कृष्ण-दर्शन जेल की दीवारों में, सीकचों में, जेलर में, स्वयं में है । अगर कृष्ण का दर्शन है, तो किसको पता लगता है कि कृष्ण का दर्शन हुआ ? कौन जानता है कि कृष्ण का दर्शन हुआ ? कौन पहचानता है कि कृष्ण दिखायी पड़ रहे हैं ? अगर पहचानने वाला पीछे बच जाता है, तो 'प्रोजेक्शन' है, तो प्रक्षेपण है । अगर कोई कहता है, मुझे कृष्ण के दर्शन हुए, तो कम-से-कम मैं कृष्ण नहीं हूँ, इतना पक्का है । जिसे दर्शन होंगे, वह तो भिन्न हो जाता है ।

नहीं, जिस विराट सागररूप कृष्ण की मैंने बात की है, वह ऐसा नहीं है कि मुझे कृष्ण के दर्शन हुए, वह ऐसा ही है कि मैं नहीं रहा और फिर जो बच गया है वह कृष्ण है । उसे कृष्ण कहें, क्राइस्ट कहें, बुद्ध कहें, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता । यह हमारी परिभाषिक शब्दावली की बात होगी कि कौन-सी शब्दावली में हम जन्मे हैं । फिर एक बार कृष्ण के दर्शन हो जाएँ और अगर दर्शन प्रक्षेपण न हो, 'प्रोजेक्शन' न हो, तो दुबारा लौटना असंभव है । फिर उस दर्शन का खो जाना असंभव है । और, बड़े मजे की बात यह है कि अरविंद की सारी साधना उसके बार शुरू होती है । जिस योगी लेले की बात उठायी है, उस योगी लेले से वह बाद में मिलते हैं । यह

जो योगी लेले से उनका बाद में मिलना है और ध्यान सीखना है—और लेले से उन्होंने ध्यान सीखा— जिस व्यक्ति को अभी ध्यान भी सीखने को बाकी हो उसको कृष्ण के विराट दर्शन हो गये हों, यह नहीं माना जा सकता। और कृष्ण के ही दर्शन हो गये हों तो अब ध्यान सीख कर क्या करियेगा ? किसके पास सीखने जाइएगा ?

फिर बड़े मजे की बात है कि लेले से उन्होंने जो ध्यान सीखा, वह बहुत छोटी-सी प्रक्रिया थी। बहुत छोटी-सी प्रक्रिया, जिसमें कुछ बड़ा गहरा नहीं था। और यह भी आप जान लें कि उसके बाद ध्यान में उनकी कोई गति नहीं हुई, जितना उन्होंने लेले से सीखा, वह आखिरी चरण था। कुल तीन दिनों वे लेले के साथ ध्यान के लिए बैठे थे, और एक बहुत छोटा सा प्रयोग था 'विटनेसिंग' का, साक्षीभाव का। जिसमें लेले ने कहा कि आप बस बैठ जाएँ और अपने विचारों को देखें। उन्होंने विचार देखना शुरू किया, लेकिन भयंकर विचारों का जाल मन पर उतरा। वे बहुत घबड़ाये। लेले ने उन्हें इतना ही कहा कि आप विचारों को ऐसे ही समझें, जैसे आपके मस्तिष्क के चारों ओर मक्खियाँ चक्कर लगा रही हैं और आप बीच में बैठे देखते रहें और उन मक्खियों को चक्कर लगाने दें। तीन दिन सतत वे विचारों का दर्शन करते रहे—कोई भी करे, और सिर्फ देखता रहे तो विचार क्षीण हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं। मन निर्विचार हो जाता है। इसके बाद उन्होंने फिर कोई बात लेले से नहीं सीखी। और इसको उन्होंने आखिरी बात समझ ली। और अरविंद की बड़ी-से-बड़ी भूल यहीं हो गयी। यह बिल्कुल प्राथमिक चरण था। साक्षीभाव पहला चरण है। साक्षीभाव अद्वैत-भाव नहीं है। साक्षीभाव के माध्यम से अंततः अद्वैत भाव की उपलब्धि होती है। पर और कदम आगे बढ़ाने पड़ते हैं। साक्षी भाव भी मिट जाना चाहिए, क्योंकि जब तक मैं साक्षी हूँ और किसी का साक्षी हूँ, तब तक द्वैत बना रहता है। एक घड़ी आनी चाहिए कि न मैं बचूँ, न वह बचे जिसका मैं साक्षी हूँ। एक घड़ी आनी चाहिए जब

शुद्ध चेतना ही बच जाए और उस चेतना में तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन 'सब्जेक्ट' है, कौन 'आब्जेक्ट' है; कौन जान रहा है, कौन जाना जा रहा है। जब तक यह साफ है कि कौन जान रहा है और किसको जान रहा है, तब तक द्वैत जारी रहता है। और तब तक मन के बाहर जाना नहीं होता। तब तक मन का अतिक्रमण नहीं होता है। तब तक मन की 'ट्रांसेंडेंस' नहीं होती। तो न तो मैं कहूँगा कि अरविंद का अनुभव वास्तविक अनुभव था, क्योंकि जो आए और चला जाए, वह वास्तविक नहीं है। वह स्वप्नवत है। वह 'प्रोजेक्शन' है। जो आए और आ ही जाए और फिर जाने का उपाय न हो, वही वास्तविक अनुभव है। जो आए और खो जाए, वह मन का खेल है, मन की लीला है।

ध्यान के संबंध में भी साक्षीभाव की साधना से ऊपर वे कभी नहीं गये। और जिस व्यक्ति से उन्होंने सीखा था, उस व्यक्ति से पीछे उन्होंने कोई संबंध नहीं रखा। उस व्यक्ति के पास संभावना और भी थी आगे ले जाने की, लेकिन जब दुबारा लेले से अरविंद का मिलना हुआ तो अरविंद खुद गुरु हो चुके थे। और लेले से उनका जो दूसरा मिलन है, उसमें उनका जो व्यवहार है, वह बड़ी हैरानी का है। उनकी पूरी चेष्टा ऐसी रही जैसे यह बात मुलायी जा सके कि इस आदमी से कुछ सीखा है। और बहुत थोड़ा ही सीखा था, बहुत ज्यादा सीखा नहीं था।

मगर बहुत बार ऐसा हुआ है। अरविंद के साथ ही ऐसा हुआ हो, ऐसा नहीं, बहुत बार ऐसा हुआ है कि थोड़ा-सा अनुभव भी रोकने वाला सिद्ध हो जाता है। आनन्दपूर्ण होता है और फिर मन वहाँ ठहर जाता है। इसलिए आध्यात्मिक साधन में सबसे बड़ी कठिनाइयाँ न तो बाहर के घन से आती हैं, न बाहर के संबंधों से आती हैं, आध्यात्मिक साधना में सबसे कठिनाइयाँ भीतर के प्राथमिक अनुभवों से आती हैं। वे इतने सुखद हैं, इतने आनन्दपूर्ण हैं, इतने 'ब्लिसफुल' हैं कि मन होता है यहाँ ठहर जाओ। और पड़ाव को मकान समझ लेने की भूल अरविंद के साथ नहीं, हजारों

लोगों के साथ हुई है। पड़ाव को मुकाम समझ लेना बहुत आसान है। सुखद हो पड़ाव, तो मंजिल मान लेने का मन होता है।

और अरविंद ने फिर जितनी भी साधना दूसरों को बतायी है, वह लेले की बतायी गयी साधना से इंच भर आगे नहीं गयी है। जिदगी भर जिन-जिन साधकों को उन्होंने सलाह दी है, उन साधकों को दी गयी सलाह में लेले ने उन्हें जो तीन दिन में सिखाया था, उससे इंच भर आगे एक भी बात नहीं है। इसलिए मैं कहता हूँ कि उस साधना के आगे वे कभी गये नहीं। क्योंकि उन्होंने कभी किसी को उसके आगे कोई बात नहीं कही है। बस, वह उतनी ही बात। लेकिन, लेले बेचारा सीधा-सादा आदमी था, उसने दो शब्दों में कह दिया था। अरविंद जटिल चित्त के, बुद्धि के ठीक निष्णात व्यक्ति हैं, वह उसी बात को हजारों पृष्ठ में रंगते रहे। लेकिन लेले ने जो बताया था उससे इंच भर आगे भी उन्होंने कुछ बताया हो अपनी किसी किताब में, किसी वक्तव्य में, ऐसा नहीं है। उससे ज्यादा वह कुछ बता न पाए। इसलिए मैं कहता हूँ, लेले ने तीन दिन में जो उन्हें सिखाया था, उससे आगे वे कभी भी नहीं गये। उनका एक वक्तव्य भी उससे आगे नहीं जाता। साक्षीभाव से ज्यादा कुछ भी फलित नहीं हुआ।

और मैं मानता हूँ कि वह भी उन्होंने खो दिया है। क्योंकि फिर वे जिस जाल में लग गये, यह भी जान कर आपको हैरानी होगी कि लेले ने खुद क्या कहा है अरविंद से बाद में ? लेले ने कहा है कि तू भ्रष्ट हो गया है। आप जानकर हैरान होंगे। और लेले ने यह कहा है कि जो तुझे मिला था, वह तूने खो दिया है और तू वकवास में लग गया। और तू सिद्धांत-वादी बातों में पड़ा हुआ है। इनसे कोई संबंध अनुभव का नहीं है। लेले का यह वक्तव्य बड़ा अद्भुत है। लेकिन अरविंद को मानने वाले इस वक्तव्य की इधर-उधर चर्चा नहीं करते। क्योंकि यह वक्तव्य तो बहुत हैरान करने वाला है। जिस आदमी से सीखा था, उस आदमी का यह

वक्तव्य बहुत सूचक है। लेले अरविंद को मिला और उसने कहा है कि 'कि कृपा करके इस लिखने-पढ़ने के जाल में मत उलझो, अभी तुम पहुँचे नहीं वहाँ जिसकी तुमने बात शुरू कर दी। लेकिन लेले की इस बात पर भी अरविंद ने कोई ध्यान नहीं दिया है। और जब अरविन्द ने ही नहीं दिया है तो अरविंद-भक्त क्यों देने लगे हैं !

यह जो मैंने कहा कि मौलिक बात की खोज तो व्यक्ति से होती है, इसलिए उसके भूल भरे होने की संभावना ज्यादा होती है। इसका मतलब नहीं है कि वह भूल ही होती है। भूल की संभावना ज्यादा होती है। इसका मतलब यह नहीं है कि वह भूल ही होती है, भूल की संभावना ज्यादा होती है। दूसरी बात भी मैंने कही है कि परंपरा से जो बात आती है, उसके सड़ने, गलने की, गंदे हो जाने की संभावना बहुत होती है; लेकिन उसकी सारी सड़ांध और गलन के पीछे भी कहीं किसी सत्य का होना बहुत संभावी है। क्योंकि हजारों-हजारों साल तक लोग अकारण ही, बिल्कुल अकारण ही किसी गंदगी को ढो नहीं सकते। हाँ, किसी हीरे की वजह से कंकड़-पत्थरों को भी ढो सकते हैं, लेकिन हो सकता है वह हीरा कहीं बिल्कुल खो गया हो और कंकड़-पत्थर ही दिखाई पड़ते हों।

जो मैंने यह कहा, उसी के कारण दूसरी बात आपको समझाना चाहूँगा; अरविंद कहते हैं, 'सुप्रामेंटल' की, उस अतिमानस की जो वे बात कर रहे हैं उसके संकेत वेद में उपलब्ध हैं। इस मुल्क में एक बड़ा अनैतिक कृत्य चलता रहा है। और यह अनैतिक कृत्य यह है कि इस मुल्क में जो लोग कोई नयी बातें खोजते हैं, वे भी साहस नहीं जुटा पाते यह कहने का कि यह नयी बात मेरी है। क्यों? क्योंकि इस मुल्क को पता है कि नयी बातों के गलत होने की संभावना है। इसलिए इस मुल्क की लंबी परंपरा में एक व्यवस्था बन गयी है कि कितनी ही नयी बात खोजो, किसी पुराने शास्त्र को आधार बनाओ। सदा यह बताओ कि वह वेद में है, सदा बताओ कि वह उपनिषद में है। सदा बताओ कि ब्रह्मसूत्र में है।

इसीलिए वेद, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र का अपना क्या अर्थ है, यह तय करना ही मुश्किल हो गया है। क्योंकि हर आदमी अपने को उनमें थोप कर बताता है। यह पुरानी दुकान की 'क्रेडिट' के लाभ लेने के उपाय हैं, और कुछ भी नहीं है। वेद में है या नहीं, इसका सवाल नहीं है। लेकिन दयानंद उसी सूत्र में कुछ और दिखाएँगे, जो उनको सिद्ध करना है। अरविंद उसी सूत्र में कुछ और दिखाएँगे, जो उनको सिद्ध करना है। शंकर कुछ और दिखाएँगे, जो उनको सिद्ध करना है। उस सूत्र की गति हो गयी, उसकी बिल्कुल मिट्टी पलीद कर दी है। वेदों की, ब्रह्मसूत्र की और उपनिषद की, इन तीनों की इस बुरी तरह से कठिनाई हमने खड़ी की है—और वही हाल गीता का भी किया है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति यह सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि वह जो कह रहा है, वह वही है जो उपनिषद भी कहते हैं, गीता भी कहती है, वेद भी कहते हैं। इसलिए एक बहुत ही अजीब-सी मानसिक व्यभिचार की स्थिति इस देश में पैदा हुई। एक बौद्धिक-व्यभिचार पैदा हुआ है, एक 'इंटलेक्चुअल प्रॉस्टिट्यूशन' पैदा हुआ है। चीजों को सीधे न कहकर थोपने का आग्रह इतना ज्यादा हो गया, क्योंकि उसी के बल खड़े हो सकते हैं। मैं मानता हूँ यह भी आत्मविश्वास की कमी है। अगर अरविंद को कोई सत्य का अनुभव हुआ है, तो वेद उससे उल्टा भी कहते हों तो वह भाड़ में जाएँ, वेद से क्या लेना-देना है? अगर अरविंद को कोई सत्य दिखायी पड़ा है, तो वह निपट निजता में कह सकते हैं कि यह सत्य है। यह मैंने देखा और जाना। लेकिन, भीतर अगर संदेह है, तो फिर वेद का सहारा लिये बिना कोई रास्ता नहीं है। वेद के कंधे पर बैठना पड़ेगा। फिर गीता के कंधे पर बैठना पड़ेगा, फिर उपनिषद के कंधे पर बैठना पड़ेगा। और फिर सबको अपने पीछे खड़ा करके दिखाना पड़ेगा कि जो मैंने जाना वह जाना।

यह भी ध्यान रहे कि वेद का ऋषि किसी का सहारा नहीं खोजता। उपनिषद का ऋषि किसी का सहारा नहीं खोजता। उसके वक्तव्य सीधे

हैं। ब्रह्मसूत्र का ऋषि किसी का सहारा नहीं खोजता। उसके वक्तव्य सीधे हैं। वह कहता है, ऐसा है। लेकिन फिर भारत में एक बौद्धिक पतन की लंबी कहानी है, जिसमें फिर कोई कहने की हिम्मत नहीं जुटाता कि ऐसा है, ऐसा मैं जानता हूँ। फिर वे सब कहते हैं, ऐसा है, क्योंकि वेद ऐसा कहते हैं, और जो वेद कहते हैं, वही मैं भी जानता हूँ। लेकिन, सीधा वक्तव्य खोता चला गया। अरविंद उस कड़ी में आखिरी हिस्से हैं।

इससे मैं कहता हूँ कि रमण ज्यादा ईमानदार आदमी हैं। इसमें से कहता हूँ, कृष्णमूर्ति ज्यादा ईमानदार आदमी हैं। अगर गलती भी करनी है तो भी वेद पर मत थोपो, खुद ही अपने ऊपर लो। अगर ठीक भी खोजना है तो खुद ही अपने ऊपर लो। निर्णय तो हो सके, कल तय तो हो सके कि तुमने जो जाना था उसमें कुछ सार था कि नहीं था। लेकिन उस सबको 'कम्प्यूजन' में डाल दिया जाता है। सारी गवाहियाँ खड़ी कर दी जाती हैं।

इसलिए मैं मानता हूँ कि भारत में दर्शन का वैसा 'आनेस्ट', ईमानदार विकास नहीं हो सका जैसा पश्चिम में दर्शन का ईमानदार विकास हुआ है। क्योंकि सुकरात अगर कहता है खुद 'अथॉरिटी' है, खुद अधिकारी है। अगर कांट कुछ कहता है तो खुद अधिकारी है। अगर विट्गिंस्टीन कुछ कहता है तो खुद अधिकारी है। इनमें से कोई भी दूसरे पर अधिकार नहीं खोजने जाता है। कोई भी यह कहने नहीं जाता कि मैं जो कहता हूँ वह ठीक है, क्योंकि सुकरात भी ऐसा कहता है। इसलिए पश्चिम में एक ईमानदारी दर्शन की पैदा हुई और उसी ईमानदारी से विज्ञान पैदा हुआ है— उसी ईमानदारी का परिणाम विज्ञान है। क्योंकि विज्ञान बेईमानी से पैदा नहीं हो सकता। हिंदुस्तान में विज्ञान पैदा नहीं हो सका, क्योंकि एक बहुत गहरी बौद्धिक बेईमानी में हम फँसे हैं। यहाँ यह तय करना ही मुश्किल है कि कौन आदमी क्या कह रहा है। क्योंकि हर आदमी दूसरे की वाणी बोल रहा है। और हर आदमी दूसरे के शब्दों से जी रहा है। और हर

आदमी दूसरे शास्त्रों पर खड़ा हुआ है।

मैं तो कहूँगा कि अरविंद का यह आग्रह कि वेद में भी यही है, एक आत्महीनता के बोध से पैदा होता है। इसमें बहुत अनुभव की बात नहीं है, इसमें बहुत आसान सहारे खोजने की बात है। और इस मुल्क का मन है, जो वेद से प्रभावित है; इस मुल्क का मन है जो महावीर से प्रभावित है, बुद्ध से प्रभावित है; इस मुल्क का मन परंपरानुगत है। इसलिए जब एक दफे कोई आदमी सिद्ध कर दे इतनी-सी बात कि ऐसा ही वेद में कहा है, तो हम उसे स्वीकार कर लेते हैं। इस आदमी को अलग से जाँचने की फिर हमें कोई जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए वेद की आड़ में यह आदमी स्वीकृत हो जाता है। लेकिन आड़ ही क्यों लेनी? सत्य को किस आड़ की जरूरत है? अगर मुझे कुछ दिखायी पड़ता है तो मैं कहूँगा, ऐसा मुझे दिखायी पड़ता है। और अगर वेद के ऋषियों को भी ऐसा दिखायी पड़ा होगा तो वह ठीक थे और नहीं दिखायी पड़ा होगा तो वह गलत थे। पर मेरा दिखायी पड़ना मेरे आत्मविश्वास की बात है। मैं वेद की वजह से गलत और सही नहीं हो सकता हूँ। मेरे लिए तो मेरी वजह से वेद सही और गलत हो सकते हैं, वह दूसरी बात है। अगर मुझे कोई आकर कहता है कि आप ऐसा कहते हैं और महावीर ने ऐसा कहा है, तो मैं कहता हूँ कि अगर महावीर ने ऐसा ही कहा होगा तो वे गलत होंगे। क्योंकि मैं कैसे पक्का करूँ कि महावीर ने ऐसा कहा है कि नहीं, इतना मैं पक्का कर सकता हूँ कि मैं क्या कह रहा हूँ। सारी दुनिया भी कहती हो कि ऐसा है, और मुझे जैसा दिखायी पड़ता है, तो मैं कहूँगा कि सारी दुनिया गलत होगी लेकिन मुझे जो दिखायी पड़ता है वह ऐसा है। और मैं सिर्फ अपने ही दिखायी पड़ने के लिए गवाह हो सकता हूँ, दुनिया भर के दिखायी पड़ने के लिए गवाह नहीं हो सकता हूँ।

लेकिन यह तरकीब बड़ी आसान है। यह बड़ी सुविधापूर्ण है। अपने व्यक्तित्व को सीधा-का-सीधा सत्य के सामने, आमने-सामने खड़े कर लेने

में हजारों साल लगेंगे इतिहास को तय करने में कि आपको मिला कुछ कि नहीं मिला। लेकिन वेद के आड़ में खड़े कर लेने में बड़ी आसानी है। वेद सही, फिर आप भी सही हैं। क्योंकि जो आप कहते हैं, वही वेद में कहा हुआ है। और यह 'ट्रिक' बड़ी आसान है। मैं एक छोटी-सी कहानी से समझाऊँ—

एक फ्रेंच कांउटेस, शाही परिवार की औरत, और बड़ी 'कस्टीडियस' सब चीजों में अपने ढंग से जीने की आदी है। एक 'एस्ट्रे' खरीद लायी थी चीन से। 'एस्ट्रे' पर जो रंग था, उसने कहा कि यही रंग मेरे बैठकखाने में होना चाहिए। बड़े-बड़े चित्रकार बुलाये गये, लेकिन रंग में कुछ फर्क पड़ जाता। वह 'एस्ट्रे' का रंग ठीक-ठीक दीवाल पर न आ पाता। वे चीनी रंग थे, वे रंग भी उपलब्ध न थे। और कितनी ही कोशिश की जाए, ठीक 'एस्ट्रे' के रंगों का तालमेल दीवालें पर नहीं बैठता। बड़े-बड़े चित्रकार आए और हारकर चले गये। फिर एक चित्रकार ने कहा कि मैं यह रंग कर दूंगा, लेकिन एक शर्त पर कि एक महीने तक इस कमरे के भीतर कोई प्रवेश नहीं कर सकेगा। उसने कहा, राजी। किसी भी शर्त पर राजी हूँ। वह एक महीने के लिए दरवाजा बंद करके अंदर चला जाता, ताला लगा लेता, कुछ करता रहता, फिर बाहर निकल आता। महीने भर के बाद उसने उसको कहा कि अब आप अंदर आ-जाएँ। अंदर आकर देखा तो ठीक 'एस्ट्रे' के कलर की सारी दीवालें हो गयी हैं। और उस महिला ने उसे लाखों रुपये इनाम दिये। मरते वक्त उस चित्रकार ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि एक ही रास्ता था कि पहले मैंने दीवालें पोत दीं और फिर उसी रंग में 'एस्ट्रे' पोत दी। तब मेल बिल्कुल बैठ गया।

यह अरविन्द और दयानन्द और सब पहले दीवालें पोतते हैं, फिर 'एस्ट्रे' पोतते हैं। पहले अपना सिद्धांत बना लेते हैं, फिर वेद पर पोत देते हैं। फिर उसमें से सब निकाल लेते हैं। फिर संस्कृत और ग्रीक और लैटिन और अरबी, जितनी भी पुरानी भाषाएँ हैं वे सब काव्य-भाषाएँ हैं, विज्ञान-

भाषाएँ नहीं हैं। काव्य-भाषाओं में एक खतरा है, एक सुविधा है। सुविधा यह है कि काव्य-भाषाओं के एक-एक शब्द अनेकार्थी होते हैं। और खतरा यह है कि एक-एक शब्द चूँकि अनेकार्थी होते हैं, इसलिए कभी तय नहीं किया जा सकता कि मूलरूप से जिस आदमी ने उन शब्दों का प्रयोग किया था, उसका क्या अर्थ है। एक-एक शब्द के दस-दस, बारह-बारह अर्थ होते हैं। और आज किस हिसाब से हम तय करें कि जिस आदमी ने यह वक्तव्य दिया था उसका इन दस-बारह अर्थों में कौन-सा अर्थ है? काव्य के लिए बड़ी अच्छी हैं ये भाषाएँ। क्योंकि काव्य में एक शब्द जितना अर्थी हो, उतने रंग आ जाते हैं। कविता की दो कड़ियों में जितने रंग आ जाएँ, उतनी कविता गहरी हो जाती है। और हर पढ़ने वाला अपना अर्थ निकाल सकता है। और ढंग-ढंग के लोग प्रभावित हो सकते हैं। लेकिन विज्ञान ऐसे नहीं चलता। विज्ञान में तो भाषा 'एक्जेक्ट' होनी चाहिए। और 'अ' का अर्थ 'अ' ही होना चाहिए। तो पुरानी कोई भाषा वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि विज्ञान पुरानी भाषा में पैदा नहीं हुआ था। और इसलिए विज्ञान अब रोज नयी भाषा पैदा करता जा रहा है।

आप जानकर हैरान होंगे कि फिजिक्स जो कि इस समय सर्वाधिक विकसित विज्ञान है, उसने तो धीरे-धीरे भाषा के शब्दों का उपयोग बन्द कर दिया और गणित के फार्मूलों का उपयोग शुरू कर दिया। क्योंकि गणित का फार्मूला 'एक्जेक्ट' हो सकता है। आदमी के प्रयोग किये गये शब्दों की 'एक्जेक्टनेस' संदिग्ध है। उसमें कई अर्थ हो सकते हैं और हर उपयोग करने वाले का अपना अर्थ हो सकता है इसलिए आइंस्टीन की किताब सिर्फ वही आदमी समझ सकता है, जिसने बहुत 'हायर मैथे-मेटिक्स' को समझा हो। आइंस्टीन की किताब को समझने के लिए भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं रहा, गणित का ज्ञान अनिवार्य हो गया। क्योंकि भाषा गणित बन रही है। और आइंस्टीन जैसे लोगों का ख्याल है कि भविष्य की जो विज्ञान की भाषा होगी, वह शब्दों को छोड़कर 'सिबल' को

ले लेगी गणित के, क्योंकि उसी में ठीक बात कही जा सकती है, अन्यथा कोई भी कुछ अर्थ कर सकता है।

तो यह जो, यह सुविधा जो है इस देश में—यह सब जगह है जहाँ-जहाँ पुराने ग्रंथ हैं, और सब पुराने ग्रंथ पुरानी भाषाओं में हैं, और पुरानी भाषाएँ काव्य के आसपास निर्मित हुई थीं—इसलिए जानकर हैरानी होगी कि हिंदुस्तान में वैद्यक के ग्रंथ भी कविता में लिखे हुए उपलब्ध हैं। थोड़ा सोचने जैसा मामला है। असल में कविता ही लिखने का ढंग थी, बोलने के; उसके कारण थे। उसके कारण थे, क्योंकि लिखना बहुत बाद में आया और याददाश्त रखकर ही शास्त्रों को मन में रखना पड़ता था। कविता को याद रखना आसान है। गद्य को याद रखना मुश्किल है, पद्य को याद रखना आसान है। उसमें एक तुक के कारण सुविधा है, वह याददाश्त में रह जाती है। इस लिए सब वेद, सब उपनिषद, सब गीताएँ, सब कुरान काव्य की भाषा में पद्यबद्ध हैं। ताकि उन्हें याद रखना आसान हो। हजारों साल तक याद रखना पड़ा, लिखने का उपाय न था। मगर उस याद रखने के लिए कविता ने सुविधा दी, लेकिन अर्थ की सुविधा खो गयी। इसलिए अब हर आदमी को सुविधा है कि जो अर्थ वेद में करना चाहे, कर ले। मगर अब मैं मानता हूँ कि किसी भी आदमी को ऐसा अर्थ करने नहीं जाना चाहिए। नहीं जाना चाहिए इसलिए कि यह बहुत वचकाना खेल हो गया, इसमें कोई बहुत प्रयोजन नहीं है। और क्यों सहारा खोजा जाए ! क्यों न ऐसा कहा जाए कि मुझे ऐसा दिखायी पड़ता है। हो सकता है वेद भी ऐसा कहते हों। कहते हों तो ठीक होंगे, न कहते हों तो गलत होंगे। कोई वेद ने ठेका ले रखा है सदा के लिए ठीक होने का ? कि पीछे के लोगों को सिर्फ सिद्ध करना होगा कि जो वेद ने कहा है, वह ठीक कहा है। मुझे नहीं दिखायी पड़ता।

और जो मैंने कहा कि पांडिचेरी में जो प्रयोग हो रहा है वह व्यर्थ-तम प्रयोग है अध्यात्म के क्षेत्र में, इसको भविष्य को तय करने की

जखूरत नहीं है। यह तो अध्यात्म की प्रक्रिया को समझ कर आज तय किया जा सकता है। अगर एक आदमी पानी को गरम कर रहा है नीचे आग जला कर, तो यह भविष्य के बच्चे तय नहीं करेंगे कि यह भाप बनेगा, यह हम अभी तय कर सकते हैं कि भाप बन जाएगा। लेकिन अगर चूल्हे में आग की जगह बर्फ रखी जा रही है, तो यह कोई भविष्य के बच्चे तय नहीं करेंगे कि पानी भाप नहीं बनेगा, बर्फ बन जाएगा, यह हम तय कर सकते हैं। भविष्य के बच्चों पर छोड़ने का कोई खास सवाल नहीं है। अध्यात्म भी एक विज्ञान है। अध्यात्म कोई ज्योतिष-शास्त्र नहीं है, कोई हस्तरेखा-विज्ञान नहीं है, कोई सामुद्रिक नहीं है। अध्यात्म के अपने गणित के सूत्र हैं। इसलिए उल्टी प्रक्रियाओं से कुछ हल होने वाला नहीं है, यह आज कहा जा सकता है। और भविष्य अगर तय करेगा तो इतना ही तय करेगा कि मैंने जो कहा था वह ठीक था, कि अरविन्द ने जो किया था वह ठीक था। भविष्य और कुछ तय नहीं करेगा।

जगत में समस्त विकास वैयक्तिक है। जगत में समस्त विकास व्यक्तिगत है, 'इंडिविजुअल' है। उपलब्धि 'कार्मिक' है, उपलब्धि ब्रह्मांडगत है। लेकिन गति, विकास व्यक्तिगत है। जगत में समस्त चेतना की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत है। मूल स्रोत समष्टिगत है, अभिव्यक्ति व्यक्तिगत है। सागर समष्टि है, लहर सदा व्यक्ति है। चेतना जहाँ भी दिखायी पड़ेगी हमें, व्यक्ति दिखायी पड़ेगी। हाँ, जब व्यक्ति की चेतना को खोएँगे तो समष्टि की चेतना का अनुभव शुरू होगा। लेकिन मैं अपनी चेतना को खोकर अनुभव करूँगा। मेरे अनुभव के साथ आपका अनुभव नहीं हो जाएगा।

एक पुराना सूत्र ख्याल में लेना जरूरी है।

जिन लोगों ने सबसे पहले कहा कि एक ही आत्मा है सबमें, तो जो मानते थे कि अनेक आत्माएँ हैं, उन्होंने कहा, तब तो एक आदमी मरे तो सबको मर जाना चाहिए। और एक आदमी दुखी हो तो सबको दुखी हो

जाना चाहिए। ठीक कहते हैं, उन की दलील दुष्ट है। अगर चेतना एक ही है हम सब के भीतर, जैसे कि घर में बिजली एक ही है, अगर ऐसी चेतना हम में सब एक ही है और उसके बीच कहीं कोई दीवालें नहीं हैं, व्यक्ति और व्यक्ति में टूट नहीं गयी है चेतना, तो मैं जब दुखी होऊंगा तो आप कैसे सुखी रह सकेंगे? अगर मेरी और चेतना जुड़ी हुई है आपसे, तो मेरा दुख आप में प्रवेश कर जाएगा और जब मैं मरूंगा तो आप कैसे जिन्दा रह सकेंगे? मैं मरूंगा तो आपको मरना पड़ेगा। इस तर्क के आधार पर वे लोग मानते रहे कि आत्मा एक नहीं है, सबमें अलग-अलग है। मैं उनके तर्क को बहुत ठीक नहीं मानता। क्योंकि यह मानता हूँ कि बिजली एक घर में सारे बल्बों में एक है, लेकिन अगर एक बल्ब को फोड़ दें तो सब बल्ब नहीं फूट जाएंगे। हालाँकि सारी बिजली को हटा लें, तो सब बल्ब बन्द हो जाएंगे। 'मेन स्विच ऑफ' कर दें, तो सब बल्ब बुझ जाएंगे। लेकिन एक-एक बल्ब का अपना 'स्विच' भी है। और एक-एक 'स्विच' को बन्द करते रहें तो एक-एक बल्ब बन्द होता रहेगा। और बिना 'स्विच' के भी एक बल्ब को फोड़ दें तो वह तो खो जाएगा।

लहरें सब अलग हैं, उनके नीचे का जुड़ा हुआ सागर एक है। इस-लिए यह नहीं कहा जा सकता कि जब एक लहर गिरेगी तो सब लहरों को गिरना चाहिए और जब एक लहर उठे तो सब लहरों को उठना चाहिए। एक लहर गिरेगी तो एक लहर गिरेगी। बाकी लहरें उठ सकती हैं, कोई रोकने वाला नहीं है। अगर हम ऐसा इसके विपरीत सोचते हुए चलें कि समष्टि चेतना, ब्रह्म-चेतना, परमात्मा उतर आए, तो मुझमें और आपमें क्या फर्क कर जाएगा फिर! 'मेन स्विच ऑफ' हो गया।

इसलिए अरविन्द जो कल्पना कर रहे हैं—कल्पना कहता हूँ—कल्पना सुखद है। बहुत कल्पनाएँ सुखद होती हैं, लेकिन सुखद होने से कल्पनाएँ सही नहीं हो जाती हैं। यह बड़ी सुखद कल्पना है कि परमात्मा हम सब पर अवतरित हो जाए। लेकिन अगर मैं भ्रमानी रहने का तय किए

हुए हूँ, तो अरविन्द की कोई ताकत नहीं है कि मुझ पर परमात्मा को उतरवा दें, न परमात्मा की खुद की कोई ताकत है कि मुझ पर उतर आए। इतनी स्वतंत्रता तो मुझे देंगे न कि मैं अज्ञानी रह सकूँ। और जिस दिन अज्ञानी रहने की स्वतंत्रता न रह जाएगी, उस दिन ज्ञान का कितना मूल्य होगा? उस दिन तो ज्ञान एक परवशता होगी, ज्ञान भी एक गुलामी होगी, जो आपकी छाती पर सवार हो जाएगा।

अरविन्द की जो कल्पना है, देखने में सुखद, भीतर बहुत भयावह है। नहीं, मैं ऐसा नहीं देखता हूँ। आज तक की मनुष्यजाति का इतिहास ऐसा नहीं कहता। आज तक की मनुष्यजाति का इतिहास यही कहता है कि व्यक्ति-चेतना उठती है और परमात्म-चेतना में लीन हो जाती है। जब लीन होती है तो उसमें परमात्म-चेतना भी उतर जाती है। फिर तय करना मुश्किल होता है कि बूंद सागर में गिरी कि सागर बूंद में गिर गया, एक दफा बूंद गिरे। लेकिन गिरती सदा बूंद ही है, अब तक सागर को बूंद में गिरते नहीं देखा गया है। गिर जाने के बाद तय करना मुश्किल है कि कौन किसमें गिरा! एक दफा बूंद गिर जाए सागर में, तो फिर तय करना मुश्किल है कि सागर बूंद से मिला कि बूंद सागर से मिली। मिल जाने के बाद तो तय करना मुश्किल है कि कौन किससे मिला, कौन किसमें गिरा, लेकिन मिलने के पहले ऐसा कभी नहीं हुआ है कि सागर बूंद में गिरा हो। अरविन्द इसकी कामना कर रहे हैं कि सागर बूंद में गिर जाए। लेकिन किसी दिन अगर सागर बूंद पर गिरेगा, तो मैं मानता हूँ, बूंद इनकार ही करेगी। बूंद को बूंद होने का हक है। सागर इनकार नहीं करता है बूंद को गिरने से, क्योंकि बूंद के गिरने से सागर का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, कुछ कम-ज्यादा नहीं होता। सागर को पता ही नहीं चलता बूंद के गिरने से। बूंद को ही पता चलता है जब वह सागर में गिरती है कि मैं सागर में गिरी, बूंद को ही पता चलता है कि मैं सागर से एक हो गयी, मैं सागर हो गयी। सागर ने कभी ऐसा वक्तव्य नहीं दिया कि मैं बूंद से एक

हो गया। कभी परमात्मा का कोई वक्तव्य नहीं है कि मैं व्यक्ति से एक हो गया। सब वक्तव्य व्यक्तियों के हैं कि मैं परमात्मा से एक हो गया। लेकिन सागर अगर बूंद पर गिरे तो बूंद कह भी सकती है कि कृपा करो, तुम मुझे मिटा ही दोगे! और तुम्हारा गिरना मुझ पर भारी हो जाएगा।

तो मैं मानने को राजी नहीं हूँ कि 'काज़िमक कांसंसनेस', 'ब्रह्मांड चेतना' व्यक्ति के ऊपर गिरेगी, जैसा अरविंद का ख्याल है। और समस्त मनुष्यजाति के अनुभव के विपरीत है वह बात इसलिए भविष्य को नहीं छोड़ूंगा। और फिर अरविंद एक अर्थ में अतीत हो गये। अब वे नहीं हैं जमीन पर। अरविंद ने और भी वक्तव्य दिये थे जो निपट नासमझी के सिद्ध हुए हैं।

अरविंद ने कहा था कि मैं 'फिज़िकली इमॉर्टल' हूँ, मैं शरीर रूप से अमृत हूँ। और मजा यह है कि वह अंधे भक्त जो अभी भी आशा कर रहे हैं कि परमात्म-चेतना उन पर उतर आएगी, वे यह भी माने बैठे हुए थे कि अरविंद 'फिज़िकली', शरीरगत रूप से अमर हैं, उनकी मृत्यु नहीं हो सकती। और जिस आदमी में परमात्मा उतर आया हो—और अरविंद का ख्याल यह था कि परमात्मा आत्मा तक ही नहीं उतरेगा, 'फिज़िकल बॉडी' तक उतरेगा। ये जो भौतिक शरीर के अणु हैं, यह भी परमात्मरूप हो जाएंगे जब वह उतरेगा; तो फिर मृत्यु कैसे घटित हो सकती है? तो तर्क तो ठीक ही था, इसीके संदर्भ में था तर्क कि जब परमात्मा उतर ही आएगा और शरीर के कण तक उतर जाएगा, 'मैटर' तक उतर जाएगा, प्रकृति तक उतर जाएगा, तो फिर मृत्यु का क्या सवाल है? इसलिए अमृत्यु की बहुत लोगों ने बातें की हैं, लेकिन वह आत्मिक अमरत्व की बातें की हैं, अरविंद पहले आदमी हैं पृथ्वी पर जो भौतिक अमरत्व की, 'फिज़िकल इमॉर्टलिटी' की बात करते थे।

लेकिन इस तरह की बात करने में एक बड़ा फायदा है कि जब तक मैं

नहीं मरा हूँ, तब तक आप मुझे हरा नहीं सकते। और जब मैं मर ही गया तो मुझे आप क्या हराइयेगा। जब तक अरविंद जिंदा थे, दलील सही थी। कैसे सिद्ध करियेगा कि यह बात गलत होगी ! और जब मर गये, तो अब किसके सामने सिद्ध करने जाइयेगा ? लेकिन आश्चर्य यह नहीं है कि अरविंद मर गये। अरविंद के मरने के चौबीस घंटे तक जो माँ नाम की महिला उस आश्रम में हैं, उन्होंने मानने से, राजी नहीं हुई वह कि वह मर सकते हैं। उन्होंने यही माना कि वह गहरी समाधि में चले गये हैं। और तीन दिन तक शरीर को बचाने की कोशिश की, इस आशा में, क्योंकि इस मुल्क की एक पुरानी धारणा है कि योगी का शरीर 'डिसइंटीग्रेट' नहीं होता है। योगी का शरीर, मरने के बाद सड़ता नहीं। लेकिन तीन दिन बाद जब अरविंद के शरीर से बदबू छूटने लगी तब बड़ी मुश्किल हुई। फिर इसको जल्दी से दफनाना पड़ा। क्योंकि वह खबर अगर सब जगह पहुँच जाए, तो जैसा अभी पूछा गया कि यह मुल्क बहुत समझदार है और हर किसी को योगी नहीं कह देता, तो यह मुल्क मानता है कि योगी मर जाए तो उसके शरीर से बास नहीं आनी चाहिए, तो फिर क्या होगा ? फिर जब बास आने लगेगी तो यह मुल्क कहेगा कि अरे, हम बड़ी गलती में थे, यह आदमी योगी नहीं है। तो इसको जल्दी दफनाओ और यह खबर मत फैलने दो। और आज भी अरविंद आश्रम में बैठे हुए नासमझों में बहुत ऐसे हैं जो मानते हैं कि वह वापिस लौट आएँगे, क्योंकि वह 'फिजिकली इमार्टल' हैं।

यह जो नासमझियाँ हैं, हमारे यह जो अंध-विश्वास हैं, ये बड़े विचारणीय हैं। हम क्या-क्या पागलपन की बातें करते हैं ! मैं न तो मानता हूँ कि योगी के शरीर में कोई विशेषता हो जाती है कि उसमें सड़ांध न आए। सड़ेगा। ऐसा नहीं है कि नहीं सड़ेगा। क्योंकि जिस योगी का शरीर सड़ेगा ही नहीं, वह मरेगा ही किसलिए ? आखिर; सड़ने से तो मरना आता है। हमारी मृत्यु जो है, बुढ़ापा जो है, वह 'डिसइंटीग्रेशन' की शुरुआत है। जब

योगी बूढ़ा हो जाएगा, और जब योगी का शरीर बाकी सब नियम पालन करेगा, बचपन से जवानी में जाएगा, जवानी से बुढ़ापे में जाएगा, बुढ़ापे से मौत में जाएगा, तो सिर्फ एक नियम चूक जाएगा उसका कि मरने के बाद उसका शरीर सड़ेगा नहीं ? सड़ेगा । इससे कोई संबंध नहीं है । उसके भीतर की आत्मा ज्ञान को उपलब्ध हुई थी कि ज्ञान को नहीं उपलब्ध हुई थी, इससे उसके शरीर के सड़ने-न सड़ने का कोई भी संबंध नहीं है । कोई 'रेलीवेंस' नहीं है और आत्मा तो दोनों हालत में आपके भीतर है, चाहे आप योगी हैं, चाहे आप योगी नहीं हैं । आत्मा की मौजूदगी में तो कोई फर्क नहीं पड़ता । सिर्फ आत्मा के बोध में फर्क पड़ता है कि योगी जानता है कि मैं आत्मा हूँ, और आप नहीं जानते । लेकिन इस बोध से शरीर के सड़ने-न सड़ने का कोई भी संबंध नहीं है । फिर योगी बीमार भी पड़ता है । फिर हमें झूठी कहानियाँ गढ़नी पड़ती हैं, फिर हमें परेशानियाँ होती हैं ।

महावीर को मरने के पहले छः महीने पेचिश की बीमारी थी । अब जैनियों को कहानियाँ गढ़नी पड़ें, क्योंकि महायोगी को पेचिश की बीमारी हो जाए ! और वह भी उसको जिसने महाउपवास किये हों ! उसका तो पेट कम-से-कम बिल्कुल ठीक ही होना चाहिए । पेचिश और महावीर को ! तो फिर हम सबका क्या होगा ? महावीर तो खाते-पीते ही नहीं । क्या तो यह है कि बारह साल में उन्होंने तीन सौ पैंसठ दिन खाना खाया—कभी तीन महीने छोड़कर, कभी दो महीने छोड़कर, कभी चार महीने छोड़कर एक दिन खाना खाया । अब इस आदमी को भी पेचिश हो जाए ! हालाँकि मेरे हिसाब से इस आदमी को ही होनी चाहिए । क्योंकि यह जो खाने के साथ बनाचार होगा, तो पेट को नुकसान पहुँचेंगे । तो मेरे लिए तो संगति-पूर्ण है । यानी मैं तो मानता हूँ कि इसमें संगति है कि पेचिश हुई छः महीने । लेकिन महावीर को महायोगी मानकर जो चल रहा है उसकी बड़ी विपत्ति है, क्योंकि वह साथ में यह मानता है । मेरे लिए कोई दिक्कत नहीं

आती, महायोगी होने से पेचिश होने की कोई बाधा मुझे नहीं पड़ती। मैं महायोगी को इतना बड़ा मानता हूँ कि पेचिश से कोई खास नुकसान नहीं हो जाता। लेकिन कुछ हैं, जिनके लिए पेचिश हो गयी तो महायोगी कैसे ! तो उनको कहानी गढ़नी पड़ी कि यह पेचिश साधारण नहीं है, यह गोशालक के द्वारा मंत्र द्वारा फेंकी गयी पेचिश है, जिसको महावीर ने झेल लिया है। करुणावश पी गये हैं और उसको झेल रहे हैं। जब योगी बीमार पड़ता है तो हमें कहना पड़ता है, यह किसी की ली गयी बीमारी है। बड़ा मजा यह है कि योगी को आप खुद बीमार तक न होने देंगे ! तो वह यह कहेंगे कि किसी की ली गयी बीमारी है—कोई बीमार था, योगी ने उसकी बीमारी से ली।

हम किसी नालायकी की बातों में पड़े हुए हैं ! इसका कोई मतलब नहीं है ! अरविंद मरे, शरीर सड़ा, 'फिजिकल इमॉर्टलिटी' की बात बेमानी हो गयी—पहले ही बेमानी थी। लेकिन पहले यह कहा जाता है कि अभी आप कैसे कह सकते हैं, अभी तो अरविंद जिंदा हैं। लेकिन तब भी हम कह सकते थे, क्योंकि आज तक पृथ्वी पर 'फिजिकल इमॉर्टलिटी' संभव नहीं हुई। उसके कारण हैं। उसके कारण हैं, कि जो भी चीज...जैसे बुद्ध ने कहा है—ठीक कहा है—कि जो भी चीज जोड़ से बनती है वह टूटेगी, क्योंकि सब जोड़ों की सीमा है। एक पत्थर को मैं फेंकूंगा तो वह गिरेगा, क्योंकि मेरे हाथ की ताकत है फेंकने के लिए। वह ताकत जब चुक जाएगी और 'रेसिस्टेंस' टूट जाएगा, तो पत्थर गिर जाएगा। ऐसा कोई पत्थर नहीं हो सकता कि मैं फेंकूँ और फिर गिरे ही न। दूरी बढ़ सकती है, लेकिन गिरेगा। जन्म होगा, मृत्यु होगी। हाँ, ऐसा योगी 'फिजिकल इमॉर्टलिटी' को उपलब्ध हो सकता है तो जन्म ही न ले। एकदम 'फिजिकली' मौजूद हो जाए पृथ्वी पर—स्वयंभू—खड़ा हो जाए एकदम जमीन पर आकर। किसी माता-पिता से जन्म न ले। अब बड़ा मजा यह है कि एक छोर को तो आप मानते हैं कि माता-पिता से जन्म लेंगे और दूसरे छोर को नहीं मानते

कि मृत्यु होगी। इस जगत में दोनों छोर सदा साथ हैं। जो माता-पिता से जन्मेगा, वह मरेगा। क्योंकि माता-पिता 'इमॉर्टल' को पैदा नहीं कर सकते। दो शरीर ही हैं वे बेचारे, दो शरीर जो पैदा करेंगे वह शरीर के नियमों से चलेगा। और शरीर के नियमों से मरेगा। यह इतना सीधा-सा गणित भी, लेकिन हम कहेंगे जब तक अरविंद नहीं मरते तब तक आप कुछ नहीं कह सकते।

मैं कहता हूँ, मैं कह सकता हूँ। उनके मरने के लिए राह देखने की जरूरत नहीं है। क्योंकि यह सीधा गणित और विज्ञान का सूत्र है। इसमें उनकी कल्पनाओं से बाधा नहीं पड़ती, इसमें उनके अनुमानों से कोई अर्थ नहीं है। और फिर मजा यह है कि मर जाने के बाद किससे कहियेगा? अब वह सर गये, अब किससे कहियेगा? अब अरविंद से कोई विवाद का उपाय न रहा। और आप कहते हैं कि पांडिचेरी में जो हो रहा है वह बाद की पीढ़ियाँ तय करेंगी। तो यह पीढ़ी तो मूढ़ बन ही जाएगी वहाँ जाकर। इसका क्या होगा? इस पीढ़ी का क्या होगा जो वहाँ बैठकर मूढ़ता कर लेगी? इसको बनने दें? भविष्य की पीढ़ियाँ तय करेंगी, लेकिन यह पीढ़ी मर जाएगी।

नहीं, भविष्य के लिए नहीं रुका जा सकता है। ये भी आदमी कीमती हैं जो वहाँ बैठकर काम में लगे हैं। इनको भी खबर पहुँचानी जरूरी है कि तुम जो कर रहे हो, उसे एक दफा पुनर्विचार कर लो। परमात्मा कभी नहीं उतरता व्यक्ति तक, व्यक्ति ही परमात्मा तक जाता है। लेकिन जाकर जो अनुभव होता है, वह ऐसे ही होता है कि परमात्मा ही उतर आया, वह विलकुल दूसरी बात है। उसका इससे कोई लेना-देना नहीं है।

एलिस वेली के संबंध में एक सवाल पूछा है। एलिस वेली का ख्याल है कि कोई मास्टर 'के' तिब्बत के किन्हीं गुफाओं, हिमालय की किन्हीं कंदराओं से उसे संदेश देते रहे।

इसकी बहुत संभावना है। इसमें बहुत सचाइयाँ हैं।

असल में ऐसी आत्माएँ हैं, शरीर से हट गयी हैं, लेकिन जिनकी अनुकंपा इस जगत से नहीं हट गयी है। ऐसी आत्माएँ हैं, जो अपने अशरीरी जगत से भी इस जगत के लिए निरंतर संदेश भेजने की कोशिश करती हैं। और कभी अगर उन्हें 'मीडियम' उपलब्ध हो जाए, कोई माध्यम उपलब्ध हो जाए, तो उसका उपयोग करती हैं।

ऐसा कोई बेली के साथ पहली दफा हुआ हो, ऐसा नहीं है। ए० पी० सिनेट ने भी ठीक वैसे ही माध्यम का काम इसके पहले किया था। उसके पहले लीड बीटर ने भी, कर्नल अल्काट ने भी, एनीबेसैंट ने भी, ब्लावट्स्की ने भी, इन सबने भी इस तरह के माध्यम के काम किये थे। इसका एक लंबा इतिहास है। ऐसी आत्माओं से संबंधित होकर, जो आत्मिक विकास के दौर में हमसे आगे की सीढ़ियों पर हैं, बहुत कुछ जाना जा सकता है और बहुत कुछ संदेशित किया जा सकता है, 'कम्यूनिकेट' किया जा सकता है।

ठीक इसी तरह का बहुत बड़ा प्रयोग, जो असफल हुआ, वह ब्राह्म-बादियों ने जे० कृष्णमूर्ति के साथ करना चाहा था। बड़ी व्यवस्था की थी कि कृष्णमूर्ति को उन आत्माओं के निकट संपर्क में लाया जाए जो संदेश देने को आतुर हैं, लेकिन जिनके लिए माध्यम नहीं मिलते। और कृष्णमूर्ति की पहली किताबें 'एट दै फीट ऑफ दै मास्टर' या 'लाइफ्स ऑफ अलकयॉनी' उन्हीं दिनों की किताबें हैं। इसलिए जे० कृष्णमूर्ति उनके लेखक होने से इनकार कर सकते हैं, करते हैं। वे उन्होंने अपने होश में नहीं लिखी हैं। 'एट दै फीट ऑफ दै मास्टर'—'गुरुचरणों में'—बड़ी अद्भुत किताब है। लेकिन कृष्णमूर्ति उसके लेखक नहीं हैं। सिर्फ माध्यम हैं। किसी आत्मा के द्वारा दिये गये संदेश उसमें संग्रहीत हैं।

बेली का भी दावा यही है। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक इसे इनकार करेंगे। क्योंकि मनोविज्ञान के पास अभी कोई उपाय नहीं है जहाँ से वह स्वीकार कर सके। पश्चिम के मनोविज्ञान को अभी कुछ भी पता नहीं है

कि मनुष्य के इस शरीर के बाद और शरीर भी हैं। पश्चिम के मनोविज्ञान को कोई पता नहीं है कि इस शरीर के बाद भी कोई शेष रह जाता है। पश्चिम के मनोविज्ञान को अभी यह भी बहुत स्पष्ट पता नहीं हो पा रहा है—मैं मनोविज्ञान कह रहा हूँ, 'साइकिक साइंसेज' की बात नहीं कर रहा हूँ, 'साइकोलॉजी' की बात कर रहा हूँ, पश्चिम का जिसको हमें कहना चाहिए 'ऑफिसियल साइकोलॉजी'; आक्सफोर्ड, कैंब्रिज और हार्वर्ड में जो पढ़ाई जाती है विद्यार्थी को वह जो मनोविज्ञान है—उस मनोविज्ञान को अभी इन सबका कोई भी पता नहीं है कि मनुष्य अशरीरी स्थिति में भी रह सकता है। और अशरीरी स्थितियों से भी संदेश दिये जा सकते हैं। और ऐसी बहुत-सी आत्माएँ हैं जो निरंतर संदेश देती रही हैं, इस सदी में ही नहीं।

महावीर के जीवन में बहुत उल्लेख है। महावीर एक गाँव के किनारे खड़े हैं—मौन हैं। एक ग्वाला अपनी गायों को उनके पास छोड़कर और यह कह कर कि मैं थोड़ी देर में आता हूँ, जरा मेरी गायों को देखते रहना; गाँव वापस चला गया। महावीर मौन खड़े हैं इसलिए हाँ भी नहीं भर सकते; ना भी नहीं कर सकते। कुछ नहीं कहा है, वह जल्दी में यह सोचकर कि देखता रहेगा यह आदमी, कुछ काम भी नहीं कर रहा है, नंगा खड़ा है गाँव के किनारे, वह अंदर चला गया है। लौट कर जब आया है, तब तक गायें चल पड़ी हैं और जंगल के अंदर खो गयी हैं। उस आदमी ने समझा कि यह बड़ा बेईमान आदमी मालूम पड़ता है, गायें चोरी करवा दीं इसने, गायें चोरी हो गयीं। तो उसने मारा, पीटा, ठोंका; उनके कान में कील ठोक दिये। और कहा, बहरे हो ! लेकिन वह फिर भी चुप रहे, क्योंकि वे चुप ही खड़े हैं।

तो एक कथा है कि इंद्र ने आकर महावीर को कहा कि मैं आपकी रक्षा का कोई उपाय करूँ ? अब यह इंद्र कोई व्यक्ति नहीं है। यह इंद्र अशरीरी एक आत्मा है, जो इतने निरीह, निपट सरल आदमी पर हुए व्यर्थ के

अनाचार से पीड़ित हो गयी है। लेकिन महावीर ने कहा, नहीं। अब यह बड़े मजे की बात है कि महावीर ग्वाले से नहीं बोले और इंद्र से कहा, नहीं। तो निश्चित ही यह 'नहीं' भीतर कहा गया है, बाहर नहीं कहा गया है। नहीं तो ग्वाले से ही बोल लेते। इसमें क्या कठिनाई थी ? इसलिए यह इंद्र से जो बात है, यह 'इनर' है, यह भीतरी है, यह 'साइकिक' है, 'एस्ट्रल' है। यह महावीर ने ओंठ नहीं खोले हैं अभी भी, उनके ओंठ बंद ही हैं। यह बात किसी और तल पर हुई है, नहीं तो महावीर का मौन टूट गया—वह बारह साल के लिए मौन हैं—यह मौन नहीं टूटा। इस पर महावीर के पीछे चलने वालों को बड़ी कठिनाई आती है कि इसको कैसे हल करें, क्योंकि अगर यह इंद्र कोई आदमी है तो फिर यह महावीर बोल गये और मौन टूट गया। और जब इंद्र ही से तोड़ दिया, तो गरीब ग्वाले ने क्या बिगाड़ा था, उससे ही तोड़ लेते। लेकिन न तो मौन टूटा, क्योंकि ऐसे मार्ग हैं जहाँ बिना वाणी के वाणी संभव है, जहाँ बिना शब्द के बोला जा सकता है और जहाँ बिना कानों के सुना जा सकता है, और ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो अशरीरी हैं।

महावीर ने कहा, नहीं; क्योंकि तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर मैं परतंत्र हो जाऊँगा। मुझे असुरक्षित ही रहने दो, लेकिन वह मेरी स्वतंत्रता तो है। अगर तुमसे मैंने रक्षा ली, तो मैं तुमसे बँध जाऊँगा। तो मुझे असुरक्षित रहने दो। असल में महावीर यह कह रहे हैं कि ग्वाला मुझे इतना नुकसान नहीं पहुँचा सकता, जितना तुमसे सुरक्षा लेकर मुझे पहुँच जाएगा। उसे मारने दो, उससे कुछ हर्जा नहीं होता; बाकी तुमसे रक्षा लेकर तो मैं गया, तब तो तुम मेरी 'सिक्योरिटी' बन गये, तुम मेरी सुरक्षा बन गये।

बुद्ध को जब पहली दफा ज्ञान हुआ, तो देवताओं के आने की कथा है कि देवता आए और बुद्ध से प्रार्थना करने लगे—क्योंकि बुद्ध सात दिन तक बोले ही नहीं ज्ञान के बाद। उन्हें ज्ञान हो गया लेकिन वाणी खो गयी।

अक्सर ऐसा होगा ही। जब ज्ञान होगा, वाणी खो जाएगी। अज्ञान में बोलना बहुत आसान है। क्योंकि कोई डर ही नहीं है कि क्या बोल रहे हैं। जिसका हमें पता नहीं है, उस संबंध में बोलना बहुत सुविधापूर्ण है। क्योंकि भूल होने का भी कोई डर नहीं है। बुद्ध को ज्ञान हुआ, वाणी खो गयी, सात दिन वे चुप बैठे रहे, देवता उनके आसपास हाथ जोड़े खड़े रहे और प्रार्थना करते रहे, बोलो। सात दिन बाद वे सुन पाए। देवताओं ने प्रार्थना की कि आप नहीं बोलेगे तो जगत का बड़ा अहित होगा। लाखों वर्षों में ऐसा व्यक्ति पैदा होता है। तो आप चुप न रहें, आप बोलें !

ये देवता कोई व्यक्ति नहीं हैं। ये वे आत्माएँ हैं, जो आतुर हैं कि एक व्यक्ति को उपलब्ध हो गया है। जो वे खुद कहना चाहती हों आत्माएँ जगत से, लेकिन उनके पास अब शरीर नहीं है, इस व्यक्ति के पास अभी शरीर है और यह कह सकता है, और इसको वह मिल गया है जो कहा जाने योग्य है, और पृथ्वी पर ऐसी घटना मुश्किल से, मुश्किल से कभी-कभी घटती है। तो वे आत्माएँ प्रार्थना करती हैं कि आप कहें। आप कहें। बुद्ध को बामुश्किल राजी कर पाती हैं कहने को। लेकिन बुद्ध का वे माध्यम की तरह उपयोग नहीं कर रही हैं। संदेश उनका और बुद्ध की वाणी नहीं है। बुद्ध का अपना ही संदेश है, अपनी ही वाणी है।

एलिस वेली जैसे व्यक्ति गलत नहीं कह रहे हैं। लेकिन वे सही कह रहे हैं, इसको सिद्ध करना उनके लिए बहुत मुश्किल मामला है। वे केवल माध्यम हैं। माध्यम इतना ही कह सकता है कि मुझे ऐसा सुनायी पड़ता है भीतर के अंतर-आकाश में। लेकिन कैसे सिद्ध करेगा कि भीतर के अंतर-आकाश में मुझे ऐसा सुनायी पड़ता है, यह सही है ? यह मेरे ही मन का खेल नहीं है, वह कैसे सिद्ध करेगा ? यह मेरा ही 'अनकांसंस' नहीं बोलता है, यह कैसे सिद्ध करेगा ? यह मैं ही अपने को किसी 'डिसेप्शन' में नहीं डाल रहा हूँ, यह कैसे सिद्ध करेगा ? बहुत मुश्किल है। माध्यम

को सिद्ध करना मुश्किल है। इसलिए बेली को मनोवैज्ञानिक हरा सकते हैं।

और आखिरी सवाल पूछा है कि क्या मेरा किसी इस तरह के मास्टर या ऐसे किसी गुरु से संबंध है ?

नहीं, उधार काम मैं करता ही नहीं। मेरा संबंध सिर्फ मुझसे है। तो जो भी मैं कह रहा हूँ वह मैं ही कह रहा हूँ। उसकी भूल-चूक, उसके सहो-गलत होने का सारा जिम्मा मुझ पर है। किसी 'मास्टर' से मेरा कोई लेना-देना नहीं है। और अगर मैं किसी को 'मास्टर' बनाऊँ, तो डर यह है कि फिर मैं किसी का 'मास्टर' बन सकता हूँ। वह काम मैं करता नहीं। न मैं किसी का शिष्य हूँ, न किसी को शिष्य बनाने का सवाल है। निपट जो सीधा मुझे दिखायी पड़ रहा है, वह मैं कह रहा हूँ, इसलिए मुझे कोई सिद्ध करने की जरूरत नहीं है कि 'मास्टर्स' होते हैं कि नहीं होते हैं। मैंने सिर्फ बात कही है आपसे। वे होते हैं कि नहीं होते हैं, इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। इतना मैं कहता हूँ कि शरीर छूट जाने के बाद बुरी आत्माएँ भी बच जाती हैं, जिन्हें हम प्रेत कहते हैं, अच्छी आत्माएँ भी बच जाती हैं, जिन्हें हम देवता कहते हैं। इन देवताओं के लिए पश्चिम में जो नया शब्द है 'मास्टर' का, वह पकड़ गया है। इस देवताओं ने सदा संदेश भेजे हैं। वे आज भी संदेश भेजने के लिए सदा उत्सुक हैं। प्रेतात्माओं ने भी, बुरी आत्माओं ने भी संदेश भेजे हैं। अगर आपके मन की स्थिति ऐसी हो कि प्रेतात्मा आपको संदेश दे सके, तो बराबर देगी। और बहुत बार आदमियों ने ऐसे काम किए हैं जो उन्होंने नहीं किए हैं, किसी ने उनसे करवाये हैं। बुरे आदमियों ने भी करवाये हैं। बुरी आत्माएँ भी आप से काम करवा लेती हैं, जो आपने नहीं किया है। इसलिए जरूरी नहीं है कि जब अदालत में एक आदमी कहता है कि यह हत्या मैंने नहीं की, मेरे बावजूद हो गयी है, तो पक्का नहीं है कि वह आदमी झूठ ही कहता हो। यह हो सकता है। ऐसी आत्माएँ हैं, जिन्होंने निरंतर हत्याएँ करवायी हैं।

ऐसे घर हैं जमीन पर जिन पर उन आत्माओं का वास है कि उस घर में जो भी रहेगा, वे उनसे हत्या करवा लेंगी। बदले हैं, लंबे भी; पीढ़ियों ही नहीं चलते भगड़े, जन्मों भी चलते हैं।

एक व्यक्ति को मेरे पास लाया गया—एक युवक को मेरे पास लाया गया। जिस मकान में वह रह रहा है, अभी कोई दो साल पहले, तीन साल पहले वह उस मकान को खरीदे और उसमें आए, तब से उस लड़के में कुछ गड़बड़ होनी शुरू हो गयी और उसका सारा व्यक्तित्व बदल गया। वह सौम्य था, विनम्र था, वह सब खो गया। वह दंभी, अहंकारी, हिंसक, हर चीज के तोड़-फोड़ में उत्सुक, जरा-सी बात में लड़ने को आतुर हो गया—अचानक जिस दिन घर में वह आया। अगर यह धीरे-धीरे होता तो भी पता न चलता। एकदम से 'पर्सनलिटी चेंज' हुई, एकदम से व्यक्तित्व बदला। वह मेरे पास लाए। उन्होंने कहा कि हम बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। और जैसे ही उसको घर के बाहर ले जाते हैं, वह फिर ठीक हो जाता है। जब मेरे पास लाए तो वह ठीक था। वह कहने लगा, मैं खुद ही मुश्किल में हूँ। अब अभी मैं बिल्कुल ठीक हूँ। लेकिन न-मालूम उस घर में जाकर क्या होता है कि मैं एकदम गड़बड़ हो जाता हूँ।

उसको बेहोश किया, उसको सम्मोहित किया और उससे पूछा। तो ग्यारह सौ साल लंबी कहानी! कोई आदमी ग्यारह सौ साल पहले उस खेत का मालिक था, जहाँ वह मकान है। और ग्यारह सौ साल से वह निरंतर कोई पेंतीस हत्याएँ करवा चुका। उसने सब वक्तव्य दिया कि मैं तो जब तक इससे हत्या न करवा लूँ, तब तक छोड़ने वाला नहीं हूँ। और ग्यारह सौ साल से निरंतर वह उस परिवार के लोगों की हत्या करवा रहा है, जिसके द्वारा उसकी हत्या ग्यारह सौ साल पहले की गयी थी। उसकी हत्या की गयी थी। और तब से वह प्रेत है। और उस जगह बैठा है। और जिसने उसकी हत्या की थी, जिस परिवार ने, जिन दस-पंद्रह लोगों ने उसकी हत्या में हाथ बँटाया था, निरंतर उनकी हत्या में वह संलग्न

है। वह किसी रूप में, वह कहीं पैदा हों, वह उनकी हत्या करवा रहा है।

बुरी आत्माएँ भी अपने संदेश पहुँचाने की चेष्टा करती हैं। बहुत बार आप इस खयाल में होंगे कि आप कर रहे हैं, आप नहीं कर रहे होते। बहुत बार आपसे ऐसा अच्छा कृत्य हो जाता है जो कि आप खुद ही नहीं सोच सकते कि मैं कर सकता था ! दूसरे की बात छोड़ें, दूसरा तो मानता ही नहीं कि किसी ने अच्छा किया, आप खुद भी नहीं मान पाते कि इतना अच्छा मैं कर सकता था जो मैंने किया। उसमें भी कोई संदेश काम करते चले जाते हैं।

वेली के वक्तव्य में कोई गलती नहीं है, लेकिन वेली अपने वक्तव्यों को सिद्ध न कर पाएगा। कोई नहीं कर पाता। ब्लावट्स्की नहीं कर पाई अपने वक्तव्यों को सिद्ध। और मैंने इस बीच एक बात कही, उसको थोड़ा और समझा दूँ। मैंने कहा कि कृष्णमूर्ति के साथ एक बहुत बड़ा प्रयोग किया जा रहा था, जो असफल गया। एक बहुत बड़ा प्रयोग था कि जिन-को हम देवलोक की आत्माएँ कहें उनमें बहुत-सी आत्माएँ एक-साथ उत्सुक होकर इस व्यक्ति में एक ऐसी चेतना को जन्माना चाहती थीं जैसा कि बुद्ध, महावीर या कृष्ण, इस तरह की एक बड़ी चेतना इस व्यक्ति के भीतर प्रवेश कर जाए। ऐसी कोई चेतना आतुर है। असल में बुद्ध का ही एक आश्वासन अभी प्रतीक्षा कर रहा है। बुद्ध का एक आश्वासन है कि ठीक समझना कि मैं ही मंत्रेय के नाम से एक बार और लौट आऊँगा। तो मंत्रेय नाम का बुद्ध-अवतार आतुर है, लेकिन उसके योग्य शरीर उपलब्ध नहीं हो रहा है। उसके योग्य ठीक संस्थान और 'मीडियम' उपलब्ध नहीं हो रहा है। 'थियोसॉफी' का सारा-का-सारा आयोजन, कोई सौ वर्ष की निरंतर श्रम-व्यवस्था एक ऐसे व्यक्ति को खोजने के लिए थी, जिसमें मंत्रेय की आत्मा प्रवेश कर जाए। इसलिए तीन-चार व्यक्तियों पर मेहनत उन्होंने शुरू की, लेकिन सभी असफल

हुआ। सर्वाधिक मेहनत कृष्णमूर्ति पर ली गयी थी, लेकिन वह नहीं हो सका। और नहीं होने के कारण में, अति मेहनत ही कारण बनी। सारे लोग इतने चेष्टारत हो गये, चारों तरफ से इतना दबाव डाला गया कि स्वभावतः कृष्णमूर्ति का अपना व्यक्तित्व विद्रोही और बगावती हो गया। वह 'रिएक्ट' कर गया। उसने अंततः इन्कार कर दिया कि—नहीं !

और उसके बाद चालीस साल हो गये, लेकिन कृष्णमूर्ति 'रिएक्शन' से पूरी तरह मुक्त नहीं हैं। वह अभी भी उन्हीं के खिलाफ बोले जा रहे हैं जो अब हैं ही नहीं। अभी भी वह जो बोल रहे हैं, वह उन्हीं के खिलाफ बोले जा रहे हैं। वह कुछ भी बोलते हैं, उनमें उनकी खिलाफत मौजूद है ही। बहुत गहरे में वह पीड़ा अभी भी मौजूद है, वह घाव एकदम भर नहीं गया। लेकिन, थोड़ी गलती हो गयी। कृष्णमूर्ति की हैसियत के आदमी को दूसरे की आत्मा के प्रवेश के लिए राजी नहीं किया जा सकता। थोड़ी और कमजोर आत्मा चुननी थी। फिर उन्होंने कृष्णमूर्ति से कमजोर आत्माएँ चुनीं। लेकिन उसकी भी तकलीफ है। उतनी कमजोर आत्मा उस आत्मा के प्रवेश के योग्य नहीं बन पाती। वह पात्र छोटा पड़ जाता है। और मंत्रेय की आत्मा उसमें प्रवेश न कर पाए। और जो पात्र बड़ा पड़ सकता है, वह खुद अपनी आत्मा में इतना गहरा है कि वह किसी आत्मा के प्रवेश के लिए राजी क्यों हो ? इसलिए बचपन में तो कृष्णमूर्ति को उन्होंने किसी तरह राजी रखा, लेकिन जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ी और उनकी 'अवेयरनेस' बढ़ी और उनका खुद का चेतना का जन्म हुआ, वैसे-वैसे इन्कार बढ़ता चला गया। एक बहुत बड़ा प्रयोग सफल नहीं हो सका और मंत्रेय की आत्मा आज भी भटकती है।

लेकिन कठिनाई बड़ी है, और कठिनाई यही है कि जो राजी हो सकते हैं उसके लिए, वह योग्य नहीं हैं और जो योग्य हैं, वह राजी नहीं हो सकते। इसलिए कहा नहीं जा सकता कि कितनी देर लगेगी मंत्रेय के व्यक्तित्व को उतरने में। उतर भी सकेगा जल्दी, यह भी संभावना रोज सिकुड़ती

जाती है। क्योंकि अब तो कोई बड़ा आयोजन भी नहीं है उसकी तैयारी के लिए। अब तो आकस्मिक आयोजन ही काम कर सकता है। वैसा ही आयोजन सदा काम किया है, अतीत में। कोई बुद्ध के लिए किसी व्यक्ति को राजी नहीं करना पड़ा। एक गर्भ उपलब्ध हो गया और बुद्ध प्रवेश कर गये। और महावीर के लिए किसी को राजी नहीं करना पड़ा, एक गर्भ उपलब्ध हो गया और महावीर प्रवेश हो गये। लेकिन उतने श्रेष्ठ गर्भ उपलब्ध होने मुश्किल होते चले गये हैं।

प्रश्न : गीता के सात सौ एक श्लोकों का पारायण करने में कम-से-कम चार घंटे लग जाते हैं। तो क्या कुरुक्षेत्र के रण-मैदान में दोनों सेनाओं के मध्य में जब श्रीकृष्णार्जुन-संवाद हुआ, उस दरम्यान चार घंटे तक युद्ध स्थगित कर दिया गया?

बिल्कुल ठीक है। बैठिए।

प्रश्न : आपने कहा था कि ज्यादा-से-ज्यादा एक साल तक शरीर छोड़ने के बाद आत्मा दूसरा जन्म ले लेती है। आज कहा कि ग्यारह सौ साल तक खून करवाती रही एक प्रेतात्मा?

हाँ, ये विशेष स्मृति वाले लोग हैं। साधारण स्मृति की बात कर रहा था मैं, ये विशेष स्मृति वाले लोग भी हैं। और हमारे बीच विशेष स्मृति वाले लोग भी हैं।

कर्जन् ने अपने संस्मरणों में एक घटना लिखी है। कर्जन् ने लिखा है कि उसके पास एक विशेष स्मृति का आदमी राजस्थान से लाया गया। विशेष शब्द भी छोटा पड़ जाता है उसकी स्मृति के लिए। वह सिर्फ राजस्थानी के अतिरिक्त कोई भाषा नहीं जानता है। तीस भाषा बोलने वाले लोग लार्ड कर्जन के वाइसराय-भवन में बिठाए गए—तीस भाषा बोलने वाले लोग। और उन तीसों से कहा गया कि वह एक-एक वाक्य अपनी-अपनी भाषा का ख्याल में ले लें। फिर वह राजस्थानी, ठेठ गँवार, गाँव का आदमी पहले आदमी के पास गया और वह अपनी भाषा के वाक्य का

पहला शब्द उसे बताएगा, फिर एक जोर का घंटा बजाया जाएगा। फिर वह दूसरे के पास जाएगा, वह अपनी भाषा के अपने वाक्य का पहला शब्द उसे बताएगा। फिर जोर का घंटा बजाया जाएगा। ऐसा वह तीस लोगों के तीस वाक्यों का पहला शब्द लेकर पहले आदमी के पास वापिस लौटेगा। अब वह दूसरा शब्द बताएगा, फिर घंटा, और ऐसा चलेगा। ऐसा घंटों की लंबी यात्रा में वे तीस आदमी अपने तीस वाक्य बताएँगे, और हर शब्द के बाद तीस शब्दों का अंतराल होगा। और बाद में उस आदमी ने तीसों आदमियों के तीसों वाक्य अलग-अलग बता दिये कि इस आदमी का पूरा वाक्य यह है, इस आदमी का पूरा वाक्य यह है, इस आदमी का पूरा वाक्य यह है, अब ऐसा आदमी अगर प्रेत हो जाए, तो ग्यारह सौ साल बहुत कम हैं। ऐसे आदमी के लिए ग्यारह सौ साल बहुत कम हैं, यह ग्यारह लाख साल तक भी याद रख सकता है। विशेष स्मृति की बात है।

और आप जो पूछते हैं, वह बहुत कीमती सवाल है। ठीक पूछते हैं। चार घंटे लग गये ! अगर हम गीता को पढ़ें तो चार चंटे लगते हुए मालूम पड़ते हैं। चार घंटे तक युद्ध रुका रहा होगा ? संभव नहीं मालूम होता। कोई तो सवाल उठाता कि यह क्या हो रहा है ? हम यहां युद्ध करने आए, हम कोई यह लंबा गीता का पाठ सुनने नहीं आए, यह कोई गीता-ज्ञान यज्ञ नहीं है कि यहाँ चार घंटे तक गीता का पाठ चले।

चार घंटे विचारणीय हैं।

अगर हम इतिहास से पूछेंगे, तो वह कहेगा कि कुछ बात ऐसी हुई होगी कि गीता तो थोड़े में कही गयी होगी, फिर बाद में उसका विस्तार किया गया। अगर हम महाभारत के जानकारों से पूछें, तो वे कहेंगे गीता जो है, वह प्रक्षिप्त है। यह जगह मौजू है ही नहीं। ऐसा मालूम होता है कि महाभारत पहले लिखा गया और फिर किसी कवि ने इस मौके को चुनकर अपनी पूरी कविता इसमें डाल दी, लेकिन यह जगह मौजू नहीं

मालूम पड़ती। युद्ध के स्थल पर इतने बड़े संदेश देने का कोई अवसर नहीं है, कोई उपाय नहीं है।

मैं क्या कहूँगा ? न तो मैं मानता हूँ कि प्रक्षिप्त है गीता, न मैं मानता हूँ कि पहले संक्षिप्त में कही गयी और फिर बड़े में कही गयी। एक छोटे-से उदाहरण से समझाऊँ तब ख्याल में आ जाए।

विवेकानंद जर्मनी गये और डयूसन के घर मेहमान हुए। और डयूसन पश्चिम में उन दिनों 'इंडोलाजी' का, भारतीय ज्ञान का बड़े-से-बड़ा पंडित था। उस कोटि के एक ही दो आदमी, जैसे मेक्समूलर का नाम गिना सकते हैं। फिर भी कई मामलों में मेक्समूलर से भी डयूसन की अंतर्दृष्टि गहरी है। उपनिषदों को पश्चिम में समझने वाला वह पहला आदमी है। गीता को समझने वाला भी पश्चिम में वह ठीक पहला आदमी है। डयूसन का अनुवाद ही लेकर शापेनहॉर सड़क पर नाचा था। गीता का अनुवाद डयूसन का जब शापेनहॉर ने पहली दफा पढ़ा, तो सिर पर रखकर वह बाजार में नाचने लगा। और उसने कहा, यह किताब पढ़ने जैसी नहीं है, नाचने जैसी है। और शापेनहॉर साधारण आदमी नहीं था, असाधारण रूप से उदास आदमी था। उसकी जिंदगी में नाच बहुत मुश्किल बात है। एकदम उदास है, उदास और दुखवादी था। 'पेसिमिस्ट' था। मानता ही यह था कि जिंदगी दुख है। और सुख सिर्फ आगे आने वाले दुख में डालने की तरकीब है। जैसे कि हम मछली को आटा लगाकर कांटा डाल देते हैं। वस, आटा है सुख। असली चीज कांटा है, जो दुख है। आटे में फँस जाओगे, कांटा चुभ जाएगा। तो सुख का इतना ही मूल्य मानता था; जितना मछली के लिए आटा मानता है। वह शापेनहॉर डयूसन का अनुवाद लेकर नाचा था। उस डयूसन के घर विवेकानंद मेहमान थे।

डयूसन ने जर्मन भाषा में लिखी एक किताब जिसे वह पढ़ रहा था, कई दिन से मेहनत कर रहा था। आधी पढ़ चुका था। जब विवेकानंद उसके पास गये थे तो वह आधी पढ़ रहा था। उसने कहा, यह बड़ी अद्भुत

किताब है। विवेकानंद ने कहा कि घंटे भर के लिए मुझे भी दे दो। पर उसने कहा, आप तो ज्यादा जर्मन जानते नहीं। तो विवेकानंद ने कहा कि जो ज्यादा जर्मन जानते हैं क्या वे समझ ही लेंगे? उसने कहा, यह जरूरी नहीं है। तो विवेकानंद ने कहा, उल्टा भी हो सकता है कि जो कम जर्मन जानता हो वह भी समझ ले। खैर, मुझे दो। पर डयूसन ने कहा, आप दो-तीन दिन ही तो यहाँ मेहमान होंगे, पंद्रह दिन तो मैं मेहनत कर चुका, अभी आधी ही पढ़ पाया हूँ। विवेकानंद ने कहा कि मैं डयूशन नहीं हूँ, मैं विवेकानंद हूँ। खैर, वह किताब दे दी गयी और घंटे भर बाद विवेकानंद ने वह किताब वापस कर दी। डयूसन ने कहा कि क्या ! किताब पढ़ गये! विवेकानंद ने कहा, पढ़ ही नहीं गये, समझ भी गये। डयूसन ऐसे छोड़ने वाला आदमी न था। उसने दस-पाँच प्रश्न पूछे, जो हिस्सा वह पढ़ चुका था उस बाबत, और विवेकानंद ने जो समझाया तो डयूसन तो दंग रह गया। उसने कहा कि आप समझ भी गये ! कैसे यह हुआ, यह चमत्कार कैसे हुआ ? विवेकानंद ने कहा, पढ़ने के साधारण ढंग भी हैं, असाधारण ढंग भी हैं।

हम सब साधारण ढंग से पढ़ते हैं, इसलिए जिदगी में दस-पाँच किताबें भी पढ़ पाएँ, समझ पाएँ, तो बहुत हैं। और ढंग भी हैं। और असाधारण ढंगों को बड़ी सीढ़ियाँ हैं। ऐसे लोग भी हैं जो किताब को हाथ में रखें और आँखें बंद करें और किताब फेंक दें। लेकिन वे 'साइकिक' ढंग हैं, वे बहुत आंतरिक ढंग हैं।

तो मेरा अपना मानना जो है वह मैं आपको कहूँ, कृष्ण ने यह गीता कोई प्रगट वाणी में अर्जुन से नहीं कही है। यह बड़ा 'साइकिक कम्प्यूनि-केशन' है, इसका किसी को पता ही नहीं चला है। यह आसपास जो युद्ध में खड़े हुए लोग हैं, इन्होंने यह नहीं सुनी है। नहीं तो भीड़ लग जाती वहाँ। वहाँ सभी इकट्ठे हो जाते, कम-से-कम पांडव तो इकट्ठे हो ही जाते। चार घंटे गीता चलती, उधर कुछ भी हो सकता था; नहीं इस

चार घंटे में कम-से-कम कृष्ण जैसा आदमी बोलता हो तो कम-से-कम पांडव तो सब इकट्ठे हो ही जाते। कौरव भी इकट्ठे हो सकते थे। कुछ भी हो सकता था, हमला भी हो सकता था, कुछ भी हो सकता था। लेकिन नहीं, यह कृष्ण और अर्जुन के बीच 'इनर कम्यूनिकेशन' है। यह 'साइकिक कम्यूनिकेशन' है। यह ठीक शब्दों में बाहर कहा नहीं गया, यह भीतर बोला गया है, भीतर पूछा गया है। और इसकी खबर सबसे पहले आस-पास खड़े लोगों को नहीं चली। सबसे पहले संजय को पता चला।

अब यह भी बड़े मजे की बात है कि वह इतने दूर बैठा है संजय और अंधे धृतराष्ट्र से कहता है। अंधा धृतराष्ट्र पूछता है कि मेरे बेटे क्या कर रहे हैं युद्ध में? कौरव-पांडवों के बीच जो चल रहा है वहाँ, क्या हो रहा है? ये बहुत मीलों का फासला है। संजय उस कथा को कहता है कि वहाँ वे धर्म के क्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में इकट्ठे हो गये हैं। वहाँ यह सब हो रहा है। वहाँ अर्जुन दुविधा में पड़ गया है। वहाँ अर्जुन जिज्ञासा कर रहा है। वहाँ कृष्ण ऐसा समझा रहे हैं। यह भी 'टेलीपैथिक कम्यूनिकेशन' है। यह संजय के पास कोई उपाय नहीं है, कुरुक्षेत्र में क्या हो रहा है उसको कहने को। तो दो आदमियों ने गीता सुनी सबसे पहले। पहले सुनी अर्जुन ने, उसके साथ सुनी संजय ने, उसके बाद सुनी धृतराष्ट्र ने, उसके बाद सुनी जगत ने। फिर उसके बाद सब फैलाव हुआ। बाकी यह कोई बाहर कही गयी बात नहीं है, इसलिए चार घंटे हमें लगते हैं गीता को पढ़ने में क्योंकि हम बाहर पढ़ते हैं। चार क्षण में भी हो गयी हो, यह भी संभव है। एक क्षण भी न लगा हो, यह भी संभव है।

प्रश्न : भगवान श्री, जैन-इतिहास के आधार पर जैनों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई थे। घोर तपश्चर्या के बाद वे ही हिंदुओं के घोर अंगिरस ऋषि के नाम से प्रचलित हुए। और अध्यात्म ज्ञान की परंपरा में गुह्य-ज्ञान के क्षेत्र में वे श्रीकृष्ण के 'लिक' रहे। आपकी इस संबंध में क्या दृष्टि है? क्या ऐसा संबंध होता है? क्योंकि आपने ही कहा

कि कृष्ण का होना आंतरिक कारणों पर अवलंबित था। वे आंतरिक कारण क्या थे—गुह्य-ज्ञान के संदर्भ में ?

नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई हैं। और यह उन दिनों की कथा है, जब हिंदू और जैन दो धाराएँ नहीं बने थे। हिंदू और जैन महावीर के बाद स्पष्ट रूप से टूटे और अलग धाराएँ बने। नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई हैं और जैनों के बाईसवें तीर्थंकर हैं। लेकिन नेमिनाथ और कृष्ण के बीच किसी तरह का कोई 'इजोटोरिक' संबंध नहीं है। किसी तरह का कोई गुह्य-ज्ञान का संबंध नहीं है। उसका कारण है। क्योंकि नेमिनाथ एक बहुत ही विभिन्न प्रकार की 'वन डायमेंसनल' परंपरा के हकदार हैं। नेमिनाथ, जैनों की जो चौबीस तीर्थंकरों की परंपरा है जिसने संभवतः त्याग की 'डायमेंसन' में इस पृथ्वी पर सर्वाधिक प्रयोग किया है। इस पृथ्वी पर इतनी लंबी परंपरा और इतने अद्भुत व्यक्तियों की इतनी बड़ी कड़ी कहीं भी नहीं हुई है।

जैनों के पहले तीर्थंकर ऋग्वेद के समकालीन, या थोड़े-से पूर्वकालीन हैं। क्योंकि ऋग्वेद में पहले तीर्थंकर के प्रति इतने सम्मानवाची शब्द हैं, जो कि समकालीन लोग समकालीन के प्रति इतनी शिष्टता कभी नहीं दिखलाते। वे शब्द इतने आदरपूर्ण हैं कि ऐसा लगता है कि यह आदमी आदृत तब तक हो चुका होगा। थोड़ा-सा वक्त बीत गया होगा। क्योंकि समकालीन आदमी के प्रति इतने सम्मानजनक शब्द—अभी तक मनुष्य इतना सम्य नहीं हो पाया है। पर इतना तो पक्का है कि वह समकालीन हैं, क्योंकि उनका नाम उपलब्ध है, और आदर से उपलब्ध है। वेद से लेकर महावीर तक हजारों साल का फासला है। इतिहास निर्णय नहीं कर पाता कि वे हजार साल कितने हैं। पश्चिम के नाप-जोख के जो ढंग हैं उस नाप-जोख के ढंग से पहले तो वे हजार-डेढ़ हजार साल से ज्यादा फासला नहीं जोड़ पाते थे, क्योंकि 'क्रिश्चियनिटी' एक बहुत गहरे पक्षपात से भरी है कि पृथ्वी को बने ही...जिस के चार हजार साल पहले सृष्टि ही

बनी। तो अब वह कोई छः ही हजार साल ही जगत की सृष्टि के हुए, तो इसमें हिंदुओं की और जैनों की काल-गणना का तो उपाय ही नहीं है। क्योंकि जब सृष्टि ही केवल छः हजार साल पहले बनी हो, तो यह लाखों साल के लंबे हिसाब का कहां हिसाब होगा।

तो इसलिए जिन लोगों ने पहली दफा पश्चिम की काल-गणना के हिसाब से यहाँ सोचना शुरू किया, उन्होंने हजार-डेढ़ हजार साल के 'स्पैन' में तीसरी बातों को बिठाने की कोशिश की, लेकिन वह सच नहीं है। और अब तो 'क्रिश्चियनिटी' को अपनी काल-गणना का ढंग छोड़ देना पड़ा है। लेकिन बड़े मजेदार लोग हैं, अंधविश्वास भी बड़े मुश्किल से छूटते हैं। अब तो जमीन में ऐसी हड्डियाँ मिल गयीं, जो लाखों साल पुरानी हैं। लेकिन एक बड़े मजे की बात आपसे कहूँ—अंधविश्वासियों को कोई प्रमाण ढिगा नहीं सकता। एक ईसाई 'थियोलाॅजियन' ने, जब यह हजारों-लाखों साल पुरानी, तीन-तीन, चार-चार, पाँच-पाँच लाख साल पुरानी हड्डियों का आविष्कार हुआ और जमीन से मिलीं, तो क्या कहा? उसने कहा कि भगवान के लिए सब कुछ संभव है। जब उसने पृथ्वी बनायी, तो उसमें ऐसी हड्डियाँ भी उसने डाल दीं जो पाँच लाख साल पुरानी मालूम पड़ सकती हैं। आदमी का मन !

लेकिन अब विज्ञान की काल-गणना लंबी हुई है। तिलक ने तो तय किया कि वेद को कम-से-कम नब्बे हजार वर्ष—कम-से-कम। नब्बे न भी हों, तो भी लंबा काल है। हजारों साल तक वेद सिर्फ स्मरण रखे गये हैं। फिर हजारों साल से लिखे हुए हैं। और जितना काल उनका लिखे हुए बीता है, उससे भी बहुत बड़ा काल उनका अनलिखा बीता है। उसमें ऋग्वेद में जैनों का पहला तीर्थंकर मौजूद है। और चौबीसवाँ तीर्थंकरों तो बहुत ही ऐतिहासिक प्रमाणों से पच्चीस सौ साल पुराना है। यह जो चौबीस तीर्थंकरों की लंबी परंपरा है, यह पृथ्वी पर त्याग के 'डायमेंसन' में सबसे बड़ी परंपरा है। इसका कोई मुकाबला पृथ्वी पर कहीं भी नहीं

है। और भविष्य में भी कहीं हो सकेगा, बहुत मुश्किल है। क्योंकि अब वह 'डायमेंसन' ही धीरे-धीरे क्षीण होती चली गयी। इसलिए यह बात बहुत सार्थक मालूम पड़ती है कि चौबीसवें तीर्थंकर के बाद पच्चीसवाँ तीर्थंकर नहीं होगा। क्योंकि त्याग का 'डायमेंसन' जो है, वह सूख गया। अब उस त्याग के 'डायमेंसन' की कोई सार्थकता नहीं रही भविष्य के लिए। लेकिन अतीत में वह बड़ा सार्थक 'डायमेंसन' था। नेमिनाथ उसमें बाईसवीं कड़ी हैं। कृष्ण के वे चचेरे भाई हैं। कभी-कभी कृष्ण का उनसे मिलना भी होता है। गाँव से नेमिनाथ निकलते हैं, तो कृष्ण उनको सम्मान देने जाते हैं। यह भी बड़े मजे की बात है। नेमिनाथ गाँव से निकलते हैं तो कृष्ण सम्मान देने जाते हैं। नेमिनाथ कभी कृष्ण को सम्मान देने नहीं गये।

त्यागी किसी को सम्मान दे, यह बड़ा मुश्किल है। बहुत कठिन है। त्यागी बड़ा कठोर हो जाता है, बड़ा पथरीला हो जाता है। उसके लिए व्यक्ति-संबंध और राग का कोई मूल्य नहीं रह जाता। तो ऐसा समझें कि कृष्ण की तरफ से नेमिनाथ चचेरे भाई हैं, नेमिनाथ की तरफ से कोई भाई-भाई नहीं है। क्योंकि नेमिनाथ कभी कुशल-क्षेम पूछने भी नहीं गये। उससे कोई संबंध नहीं है। वह तो राग की दुनिया के बाहर हैं, विराग का 'डायमेंसन' है, जहाँ सब संबंध छोड़ देने हैं, असंग हो जाना है; जहाँ कोई अपना नहीं है, जहाँ कोई है ही नहीं जिससे कोई संबंध जोड़ने की बात हो। लेकिन अगर कोई सोचता हो कि नेमिनाथ से कोई 'इन्जोटेरिक' बात, कोई गुह्य-बात कृष्ण को मिली हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि नेमिनाथ कृष्ण को कुछ भी नहीं दे सकते हैं। चाहते तो कृष्ण से कुछ ले सकते थे। उसके कारण हैं। क्योंकि कृष्ण 'मल्टीडायमेंसनल' हैं। कृष्ण बहुत कुछ जानते हैं जो नेमिनाथ नहीं जानते—नहीं जान सकते। नेमिनाथ जो जानते हैं, उसे कृष्ण जान सकते हैं, पहचान सकते हैं। उसमें कोई कठिनाई नहीं है।

कृष्ण का व्यक्तित्व समग्र को आच्छादित करता है। नेमिनाथ का व्यक्तित्व एक दिशा को पूरा-का-पूरा जीता है। इसलिए नेमिनाथ कीमती

व्यक्ति ये कृष्ण के युग में, लेकिन इतिहास पर उनकी कोई छाप नहीं छूट जाती। त्यागी की कोई छाप इतिहास पर नहीं छूट सकती। इतिहास पर त्यागी की क्या छाप छूटेगी ? उसकी एक ही कथा है कि उसने छोड़ दिया। एक ही घटना है जो इतिहास अंकित करेगा कि उसने सब छोड़ दिया। कृष्ण का व्यक्तित्व सारे हिंदुस्तान पर छा गया। सच तो ऐसा है कि कृष्ण के साथ हिंदुस्तान ने जिस ऊँचाई को देखा, फिर वह दुबारा नहीं देख पाया। कृष्ण के साथ उसने जो युद्ध लड़ा, महाभारत, फिर वैसा युद्ध नहीं लड़ पाया। फिर हम छोटी-मोटी लड़ाइयों में, टुच्ची लड़ाइयों में उलझे रहे।

महाभारत जैसा युद्ध कृष्ण के साथ संभव हो सका। और ध्यान रहे, साधारणतः लोग सोचते हैं कि युद्ध लोगों को नष्ट कर जाते हैं। लेकिन हिंदुस्तान ने तो कृष्ण के बाद, महाभारत के बाद कोई बड़ा युद्ध नहीं लड़ा। हिंदुस्तान को तो सबम ज्यादा समृद्ध होना चाहिए था, नष्ट होने का कोई कारण नहीं। लेकिन आज पृथ्वी पर वे ही कौम समृद्ध हैं, जो बड़े युद्धों से गुजरी हैं। युद्ध नष्ट नहीं कर जाते, युद्ध सोयी हुई ऊर्जा को जगा जाते हैं। असल में युद्ध के क्षणों में ही कोई कौम अपनी चेतना के, अपने होने के, अपने अस्तित्व के शिखरों को छूती है। चुनौती के क्षण में ही हम पूरे जगते हैं। तो महाभारत के बाद ऐसे जागरण का कोई क्षण नहीं आया जब हमने पूरी तरह अपने को जाना हो।

पिछले दो महायुद्ध जहाँ गुजरे हैं, एक कथा है उनकी कि वे टूटे और मिटे। लेकिन वह अधूरी है कथा। जापान नष्ट हो गया था बुरी तरह। लेकिन सिर्फ बीस साल में, जैसा जापान कभी नहीं था, वैसा फिर प्रगट हो गया। जर्मनी टूट कर बिखर गया था। दो युद्ध गुजरे उसकी छाती पर। लेकिन पहला युद्ध उन्नीस सौ चौदह में गुजरा और बीस साल बाद वह फिर दूसरा युद्ध लड़ने के योग्य हो गया। और कोई नहीं कह सकता कि दस-पाँच वर्षों में वह फिर तीसरा युद्ध लड़ने के योग्य नहीं हो जाएगा। यह

बड़ी आश्चर्य की बात है कि हमने युद्ध का एक ही पहलू देखा है कि वह नष्ट कर जाता है। हमने दूसरा पहलू नहीं देखा कि वह हमारी सारी सोयी हुई, प्रभुप्त चेतना को जगा जाता है। और हमने यह नहीं देखा कि उसकी चुनौती में हमारे वे जो अंश बेकाम पड़े रहते हैं, सक्रिय हो उठते हैं। 'क्रिएटिव' हो उठते हैं। असल में विध्वंस की छाया में, विध्वंस के साथ सृजन की क्षमता और आत्मा भी पैदा होती है। वे भी जीवन के दो पहलू हैं, इकट्ठे। और कृष्ण, जो इतने रागरंजित हैं, जो इतने नृत्य-गान में मस्त हैं, जो गीत और बांसुरी में जिए हैं, वे उस युद्ध को स्वीकार कर लेते हैं। इस स्वीकृति में कोई विरोध नहीं पड़ता। और इतने बड़े युद्ध के वे कारण बन जाते हैं।

नेमिनाथ जैसे व्यक्ति इतिहास पर कोई रेखा नहीं छोड़ जाते। इस-लिए बहुत मजे की बात है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में पहले तीर्थंकर का उल्लेख हिंदू ग्रंथों में है। फिर पार्श्वनाथ का थोड़ा-सा उल्लेख हिंदू ग्रंथों में है, तेईसवें तीर्थंकर का। और बाइसवें तीर्थंकर का अनुमान किया जाता है कि घोर अंगिरस के नाम से जिस व्यक्ति का उल्लेख है, वह नेमिनाथ है। महावीर तक का उल्लेख हिंदू ग्रंथों में नहीं है। इतने प्रभावी व्यक्ति, लेकिन इतिहास पर कोई रेखा नहीं छोड़ जाते। असल में 'रिनसिएशन' का मतलब ही यह है, त्याग का मतलब ही यह है कि हम इतिहास से विदा होते हैं। हम उस घटनाक्रम से विदा होते हैं जहाँ चीजें घटती हैं, बनती हैं, बिगड़ती हैं। हम उस तरफ जाते हैं जहाँ न कुछ बनता है, न कुछ बिगड़ता है, जहाँ सब शून्य है।

कृष्ण से सीखने को हो सकता है नेमिनाथ के लिए, लेकिन नेमिनाथ सीखेंगे नहीं। कोई जरूरत नहीं है। कोई प्रयोजन नहीं है। और नेमिनाथ के पास एक धरोहर है। उनके पीछे इक्कीस तीर्थंकरों की एक बड़ी धरोहर है, एक बड़े अनुभव का सार उनके पास है। और उस यात्रा-पथ पर जहाँ वे चल रहे हैं, उस यात्रा-पथ पर उनके पास पर्याप्त पाथेय है। उनको

कुछ सीखने की कहीं कोई जरूरत नहीं है। इसलिए नमस्कार वगैरह होता है, कुछ लेन-देन नहीं होता, कुछ आदान-प्रदान नहीं होता। ऐसे कृष्ण कभी नेमिनाथ बोलते हैं तो वहाँ भी सुनने चले जाते हैं। इससे कृष्ण की गरिमा ही प्रगट होती है। इससे महिमा ही प्रगट होती है, सीखने की सहजता ही प्रगट होती है। नहीं, कृष्ण ही वह कर सकते हैं। क्योंकि जिसे जीवन के सब पहलुओं में रस हो, वह कहीं भी सीखने जा सकता है। वह किसी को भी गुरु बना सकता है। वह किसी से भी सीख ले सकता है। लेकिन, नेमिनाथ से कुछ कृष्ण को अंतस्तल पर उपलब्ध होता हो, ऐसी कोई जरूरत ही नहीं है। ऐसा कोई कारण ही नहीं है।

प्रश्न : कृष्ण ने किस नास्तिकता से गुजर कर इतनी गहरी आस्तिकता पायी ?

जो गहरा आस्तिक है, वह गहरा नास्तिक होता ही है। सिर्फ उथले आस्तिक उथले नास्तिकों के विरोध में होते हैं। भगड़ा सदा उथलेपन का है। गहरे में कोई भगड़ा नहीं है। भगड़ा सिर्फ नासमझ आस्तिकों का नासमझ नास्तिकों से है। समझदार आस्तिक नास्तिक से भगड़ने नहीं जाएगा। समझदार नास्तिक आस्तिक से भगड़ने नहीं जाएगा। क्योंकि समझ कहीं से भी आ जाए, एक पर पहुँच जाती है। आस्तिक कहता क्या है ? आस्तिक इतना ही कहता है कि परमात्मा है। लेकिन जब आस्तिकता की गहराई बढ़ती है तो परमात्मा दूसरा नहीं रह जाता। मैं ही परमात्मा हो जाता हूँ। नासमझ आस्तिक कहता है, वहाँ है परमात्मा, कहीं और। समझदार आस्तिक कहता है, यहीं है परमात्मा, यहीं। नास्तिक कहता है, कहीं कोई परमात्मा नहीं है। अगर नास्तिक और गहरी समझ में जाए तो उसका भी मतलब यही है कि कहीं कोई परमात्मा नहीं है। मतलब, जो है, उसके अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं है, जो है, वही है। वह उसे प्रकृति का नाम देता है।

नीत्से का एक वचन है, और नीत्से गहरे-से-गहरे नास्तिकों में एक है।

उतना ही गहरा, जितना कोई आस्तिक कभी गहरा होता है। नीत्से का एक वचन है कि यदि कहीं भी कोई परमात्मा है तो मैं बर्दाश्त न कर पाऊँगा, क्योंकि फिर मेरा क्या होगा ? यानी वह यह कह रहा है कि अगर कहीं भी कोई परमात्मा है, मैं बर्दाश्त न कर पाऊँगा, मेरा क्या होगा ? तब मैं कहाँ खड़ा होता हूँ फिर ? और अगर किसी को परमात्मा होना ही है, तो मेरे होने में हर्ज क्या है ? मैं ही परमात्मा हो जाऊँगा। अब यह घोर नास्तिक है। यह कहता है, कोई परमात्मा नहीं है, क्योंकि मतलब यह है कि जो है वही परमात्मा है। यह अतिरिक्त परमात्मा को सोचने की बात ही गलत है। गहरा आस्तिक भी यही कहता है कि अतिरिक्त परमात्मा नहीं है। जो है वही परमात्मा है।

मैंने गहरी आस्तिकता और गहरी नास्तिकता में कभी कोई फर्क नहीं देखा। असल में आस्तिक विधेयवाची शब्दों का प्रयोग करता है, इतना ही फर्क है। और नास्तिक निषेधवाची शब्दों का प्रयोग करता है, इतना ही फर्क है। इसलिए जो विधेयवादी आस्तिक था उसने बुद्ध को, महावीर को नास्तिक कहा है। बुद्ध और महावीर राजी नहीं हैं नास्तिक मानने को अपने को। सांख्य या योग उथले आस्तिक को नास्तिक दिखायी पड़ते हैं। लेकिन सांख्य और योग नास्तिक नहीं हैं। नास्तिक उस अर्थों में नहीं हैं जिस अर्थों में दिखायी पड़ते हैं। सिर्फ वे जो शब्द का प्रयोग करते हैं, वह निषेध का है। कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति उथले आस्तिकों को नास्तिक मालूम पड़ सकते हैं, क्योंकि वह जो शब्द का प्रयोग करते हैं वह 'निगेटिविटी' के शब्द हैं, वह 'निगेटिव माइंड' पर उनका जोर है। और मुसीबत यह है कि कोई भी शब्द का हम उपयोग करें, दो ही उपाय हैं—या तो 'पॉजिटिव' शब्द का उपयोग करें, या 'निगेटिव' शब्द का उपयोग करें।

आस्तिक कह रहा है, जो है, वह ईश्वर है। वह विधेयात्मक वक्तव्य दे रहा है। नास्तिक कह रहा है, जो है, वह ईश्वर नहीं है। वह निषेधात्मक वक्तव्य दे रहा है। ऐसे भी ल ग हुए हैं जो इन दोनों गहराइयों को स्पर्श

करते हैं। जैसे उपनिषद कहते हैं, नेति-नेति। उपनिषद कहते हैं, यह भी नहीं है, वह भी नहीं है। ओर जो है, वह कहा नहीं गया है। ऐसे नास्तिक भी आधा कहता है, आस्तिक भी आधा कहता है। 'नींदर दिस, नाँर दैट'। न यह, न वह। दोनों ही आधी-आधी बातें कहते हैं। हम पूरी कहते हैं, और पूरी कही नहीं जा सकती है। इसलिए हम चुप रह जाते हैं। वे लोग भी। कृष्ण को किसी नास्तिकता से गुजरने का कारण नहीं है, क्योंकि कृष्ण किसी उथली आस्तिकता को पकड़ने के लिए आतुर भी नहीं हैं। असल में कृष्ण जो है उसको इतने गहनता में स्वीकार करते हैं कि उसे क्या नाम दिया जाता है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे ईश्वर कहो, उसे प्रकृति कहो—उसे अनीश्वर कहो तो भी क्या फर्क पड़ता है ! जो है वह है। ये पोधे फिर भी हँसेंगे, ये फूल फिर भी खिलेंगे, ये बादल फिर भी चलेंगे, ये पृथ्वी फिर भी होती रहेंगी, ये चाँद-तारे घूमते रहेंगे, यह जीवन उतरेगा और विदा होगा, लहरें बनेंगी और मिटेंगी। ईश्वर है या नहीं, यह सिर्फ नासमझों का विवाद है। जो है, उसे क्या फर्क पड़ता है, 'दैट व्हिच इज', उसमें क्या फर्क पड़ता है !

मैं एक गाँव में ठहरा हुआ था और उस गाँव के दो बूढ़े आदमी मेरे पास आए। एक उसमें जैन था और एक उसमें ब्राह्मण हिंदू था। वे दोनों पड़ोसी थे। दोनों बूढ़े, और उनका विवाद लम्बा था। असल में सब विवाद लम्बे होते हैं, क्योंकि विवाद में कोई अंत तो आता नहीं। वह लम्बे होते चले जाते हैं। आदमी चुक जाते हैं और विवाद चलते जाते हैं। उन दोनों का विवाद लम्बा था। कोई साठ साल के ऊपर दोनों की उम्र थी। वह मुझसे मिलने आए और उन्होंने कहा कि हम एक सवाल लेकर आए हैं जो हमारे बीच कोई पचास साल से चलता है। मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ। ये सज्जन ईश्वर को मानते हैं। आपका क्या कहना है ? मैंने कहा, आपने विवाद पूरा कर लिया, तीसरे के लिए उपाय कहाँ है ? आधा-आधा आप बाँट चुके हैं। अब मैं कहाँ खड़ा होऊँ ? फिर मैंने उनसे पूछा कि चालीस-

पचास साल से आप विवाद करते हैं, कुछ तय नहीं हो पाता ? मेरी दलीलें मुझे ठीक लगती हैं, इनकी दलीलें इन्हें ठीक लगती हैं। न मैं इनको गलत कर पाता, न ये मुझे गलत कर पाते। तो मैंने उनसे कहा कि आपको पता है, यह आपकी जिंदगी में चालीस-पचास साल चला, मनुष्य की जिंदगी में कितना लम्बा है यह विवाद ? आज तक कोई आस्तिक किसी नास्तिक को समझा पाया ? कोई नास्तिक किसी आस्तिक को समझा पाया ? क्या इससे यह पता नहीं चलता कि दोनों के पास कहीं आधी-आधी दलीलें तो नहीं हैं। क्योंकि दोनों अपनी-अपनी दलील पर मजबूत हैं। और कहीं ऐसा तो नहीं कि सत्य का आधा-आधा छोर पकड़े हुए हैं ? इसलिए दोनों को हाथ में छोर दिखायी पड़ता है। और उससे विपरीत छोर को वे कैसे मान सकते हैं कि वह भी होगा !

मैंने कहा कि मैं तुम्हारे विवाद में न पड़ूँ, तो सहयोगी हो सकता हूँ। क्योंकि अगर मैं विवाद में पड़ जाऊँ तो ज्यादा-से-ज्यादा यही होगा कि मैं एक पक्ष में खड़े होकर दलीलें दूँ। क्या उससे कोई अंतर पड़ेगा ? तो मैं तुमसे यह कहता हूँ कि अब तुम दोनों जाओ और इस बात को देखने की कोशिश करो कि दूसरा जो कह रहा है, क्या उसमें भी सत्य हो सकता है ? अब तुम इसकी फिक्र छोड़ दो कि मैं जो कह रहा हूँ उसमें सत्य है—उसमें है ही। उसके लिए मैं राजी हूँ, तुम जो कह रहे हो उसमें सत्य है। अब रह गया इतना कि दूसरा जो कह रहा है उसे असत्य मानकर ही मत चलो, उसमें भी खोजो कि क्या सत्य है ? फिर मैंने उनसे कहा कि और अगर यह तय हो जाए कि ईश्वर है, पक्का हो जाए, 'गारंटीड', कोई लिखकर दे दे, और यह निर्णय हो जाए कि ईश्वर है, तो तुम क्या करोगे ? उन्होंने कहा, करना क्या है ? मैंने कहा अगर यह तय हो जाए कि ईश्वर नहीं है, तो तुम क्या करोगे ? उन्होंने कहा, नहीं, करना क्या है ? तो फिर मैंने कहा कि इस व्यर्थ विवाद में क्यों पड़े हो ? तुम ईश्वर नहीं हो तो भी स्वाँस लेते हो। इनका ईश्वर है, तो भी ये स्वाँस लेते हैं। तुम ईश्वर की नहीं मानते

तो भी प्रेम करते हो। ये ईश्वर को मानते हैं तो भी प्रेम करते हैं। तुम्हें ईश्वर को नहीं मानते तो ईश्वर तुम्हें दुनिया के बाहर निकाल कर नहीं कर देता, तुम्हें स्वीकार करता है। ये ईश्वर को मानते हैं तो इनको किसी सिंहासन पर नहीं बिठा दिया है उसने। वह इनकी भी फिक्र नहीं करता है। अब जब ऐसी स्थिति हो, तो इस विवाद का कितना अर्थ है !

नहीं, ईश्वर और अनीश्वर को लेकर, आस्तिक और नास्तिक को लेकर 'लैंग्विस्टिक' भूल हो गयी है। सिर्फ भाषा की भूल हो गयी है। और हमारी अधिक 'फिलॉसोफी', तत्त्वचिंतन जिसे हम कहते हैं, तत्त्वचिंतन नहीं है। 'फिलॉसॉजी' में की गयी भूलें हैं, भाषाशास्त्र में की गयी भूलें हैं। और भाषाशास्त्र की भूलें ऐसी हैं कि अगर उनको हम सत्य मानकर चल पड़ें, तो बड़े उपद्रव बन जाते हैं। समझ लो कि एक गूंगा आदमी है और नास्तिक है, और एक गूंगा आदमी है और आस्तिक है। इनके बीच विवाद कैसे चलेगा ? यह क्या करेंगे जिससे कि ये कहें कि मैं आस्तिक हूँ और एक कहे कि मैं नास्तिक हूँ ? एक दिन को सोचें कि चौबीस घंटे के लिए हमारी भाषा खो जाए, तो हमारे विवाद कहाँ होंगे ? चौबीस घंटे के लिए आपकी भाषा छीन ली जाए, बस, धर्म वगैरह नहीं। धर्म वगैरह आप सम्हालकर रखिये। शास्त्र वगैरह नहीं, बिल्कुल छाती से लगा रखिये। सिद्धांत वगैरह नहीं, आपको जो मानना हो तो मानते रहिये। चौबीस घंटे के लिए अगर आपकी भाषा छीन ली जाए, तो कहाँ होगा हिंदू, कहाँ होगा मुसलमान, कहाँ होगा आस्तिक, कहाँ होगा नास्तिक ? और आप तो होंगे फिर भी भाषा के बिना। वह क्या होंगे आप ? वह होना ही धार्मिक होना है।

एक छोटी-सी घटना और अपनी बात मैं बंद करूँ। मैंने सुना है, मार्क ट्वेन एक मजाक किया करता था। वह मजाक किया करता था कि एक बार ऐसा हुआ कि सारी पृथ्वी के लोगों ने तय किया कि अगर हम सब मिलकर किसी एक क्षण में जोर से चिल्लाएँ तो चाँद तक आवाज़

पहुँच सकती है। और अगर चाँद पर कोई होगा तो सुन लेगा और जवाब भी आ सकता है, वे लोग अगर इकट्ठे होकर जवाब दें। क्योंकि चाँद पर आदमी की आँखें बहुत दिन से गड़ी हैं। चाँद से संबंध जोड़ने का मन बड़ा पुराना है। बच्चा पैदा नहीं होता और चाँद से संबंध जोड़ना शुरू करता है। तो सारी पृथ्वी के लोगों ने एक खास दिन नियत किया और ठीक बारह बजे दोपहर सारी दुनिया के लोग जोर से हुंकार करेंगे—हूँ की आवाज करेंगे, इकट्ठे। चाँद तक आवाज पहुँच जाएगी, शायद उत्तर मिल सकेगा, अगर कोई वहाँ होगा तो सुनायी पड़ जाएगा।

फिर यह हुआ, वह दिन आ गया। और बारह बजे की आतुरता से लोगों ने सड़कों पर और गाँवों में फैलकर प्रतीक्षा की। पहाड़ों पर, चोटियों पर, सब तरफ लोग फैल गये पूरी पृथ्वी पर। ठीक बारह बजे और एकदम सन्नाटा छा गया, कोई चिल्लाया नहीं। क्योंकि सबने सोचा कि मैं सुन तो लूँ कि हूँ की आवाज! सारी पृथ्वी चिल्लाएगी तो एक मौका मैं न चूकूँ चिल्लाने में, मैं सुन लूँ। तो उस दिन बारह बजे जैसा सन्नाटा हुआ पृथ्वी पर, ऐसा कभी नहीं हुआ था।

अगर ऐसा सन्नाटा कभी हो जाए, तो जो दिखाई पड़ता है यह सत्य है। ऐसा सन्नाटा अगर भीतर हो जाए और भाषा और शब्द सब खो जाएँ, तो जो दिखाई पड़ता है वह सत्य है।

सत्य का आधा हिस्सा नास्तिकों के पास है, सत्य का आधा हिस्सा नास्तिकों के पास है। और आधा असत्य से सदा बढ़ता होता है। क्योंकि असत्य को छोड़ा भी जा सकता है, आधे सत्य को छोड़ा भी नहीं जा सकता। वह सत्य मालूम पड़ता है। और ध्यान रहे, सत्य तोड़ा नहीं जा सकता, काटा नहीं जा सकता। इसलिए अगर आपके पास आधा सत्य है, तो सिर्फ आधे सत्य का सिद्धांत हो सकता है। सिद्धांत काटा जा सकता है, सत्य को काटने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए न नास्तिक सत्य है,

न आस्तिक सत्य है। दोनों आधे-आधे सत्यों के शब्दों को पढ़कर लड़ते रहते हैं।

कृष्ण को पूरा ही स्वीकार है। इसलिए कृष्ण को आस्तिक कहें, तो गलती हो जाएगी। कृष्ण को नास्तिक कहें, तो गलती हो जाएगी। कृष्ण को क्या कहें बिना गलती किये, कहना मुश्किल है।

सत्रहवां प्रवचन

स्वभाव की पूर्ण खिलावट के प्रतीक कृष्ण

3 अक्टूबर 1970, सायं; मनाली (कुल्लू)

गणेश विद्यालय

गणेश विद्यालय के छात्रों के लिए किताबें

(गणेश विद्यालय, ०१५१, गणेशपुर)

प्रश्न : भगवान श्री, आपकी प्रवचनधारा ज्यों-ज्यों बहने लगी है त्यों-त्यों आपके साथ, आपके वाक्प्रवाह के साथ बहते-बहते हम दिक्कत में पड़ जाते हैं। तकलीफ यह है कि आपके द्वारा कथित उस तिनके की भाँति हम लड़ते नहीं, बहने को हम भी हाथ-पांव पसारते हैं, मगर आपका जोश इतना है कि हम वह नहीं सकते।

सुबह आज श्री अरविंद के बारे में बातचीत हुई। 'दिवे ऑफ व्हाइट क्लॉउड' में एक जगह लिखा है—'समटाइम्स आई टेक अवे दॅ मैन, दॅ सब्जेक्ट, बट डू नॉट टेक अवे दॅ सरकमस्टांसेज़, दैट इज़ ऑब्जेक्ट। समटाइम्स आई टेक अवे दॅ सरकमस्टांसेज़, बट डू नॉट टेक अवे दॅ मैन। समटाइम्स आई टेक अवे बोथ, दॅ मैन एंड दॅ सरकमस्टांसेज़, एंड सम-टाइम्स आई टेक अवे नीदर दॅ मैन नॉर दॅ सरकमस्टांसेज़'।

श्री अरविंद की बात करते-करते प्रश्न यह उठता है मन में, कई बार, कि आप जैसा पांडिचेरी के बारे में कहते हैं वैसे मैं भी मानता हूँ, मगर जो 'इंटरप्रेटेशन' मिला आपसे, उससे ऐसा महसूस हुआ कि अरविंद के साक्षात्कार के बारे में अन्य किसी से भी क्यों पूछा जाय ?

मैं यहाँ आया था तब मुझे ऐसा लगा था कि मैं निरहंकारी रजनीश जी के पास जा रहा हूँ और मेरा अहंकार विगलित हो जाएगा। मेरा अहंकार यहाँ आकर इतना छोटा हो गया, क्योंकि मैंने देखा कि यहाँ तो निश्चय ही छोटा मालूम पड़ जाएगा। मगर कृष्ण ऐसे नहीं हैं। कृष्ण तो कहते हैं कि अनादिकाल से प्राप्त जो ज्ञान है, वह ज्ञान मैं तुमको देता हूँ। वह कृष्ण की बात है।

और आपकी शैली में भी कुछ तकलीफें पड़ती हैं। कि तर्क में आप

तैरते ही चले जाते हैं। और तर्क को छोड़कर आप जब तथ्यों में आ जाते हैं तब सब कुछ बहने लगता है, हम भी बहने लगते हैं, ऐसी अनुभूति होती है।

और वेद-उपनिषद के बारे में आपने सुबह जो कहा कि यह बेमानी है उद्धृत करना कि ऐसा ही वेद में कहा गया है, ऐसा ही उपनिषद में कहा गया है, क्योंकि यह आत्महीनता का अनुभव ही है।

इसी संदर्भ में, प्रथम उपनिषद में और बाद में श्रीमद्भगवद्गीता में 'निर्वाण' शब्द का विन्यास हो चुका था। वही भाव बुद्धोक्त 'निर्वाण' शब्द में भी मिलता है। फिर भी इस परंपरा की देन को बुद्ध ने स्वीकार नहीं किया। कृष्णावतार अनादिकाल से प्राप्त ज्ञान को पृथ्वी पर ले आने का दावा करता है। मगर बुद्ध का निजी प्रतीति पर आधार रखते हुए भी डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार उपनिषदों के सिद्धांत का ही बुद्ध के प्रवचनों में अवतरण है। तो किसकी बौद्धिक प्रामाणिकता विश्वस्त कही जाए, कृपया शंकाओं का निवारण करें।

सत्य तो अनादि है।

अनादि का अर्थ पुराना नहीं। अनादि का अर्थ है, जिसका कोई प्रारंभ नहीं है। अनादि का अर्थ है, 'बिगिनिंगलेस'। अनादि का अर्थ 'एनसिएंट' नहीं है। पुराने का तो प्रारंभ होता है, सत्य का कभी प्रारंभ नहीं होता। और जो पुराना पड़ गया, वह सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि सत्य तो अभी भी है, इस क्षण भी है। तो सत्य न तो नया होता है, न पुराना होता है। जो सत्य कहता है कि नया है, वह कल पुराना पड़ जायगा। सब जिनको हम पुराना कहते हैं वह कभी नये थे और जिनको हम आज नया कहते हैं, कल पुराने हो जाएंगे। नया तो पुराना हो जाता है, पुराना कभी नया था। सत्य न तो नया है, न पुराना है। सत्य तो वही है जो सदा है। अनादि का अर्थ यह है। अनादि का अर्थ पुराना, प्राचीन नहीं है।

तो यदि कृष्ण कहते हैं कि मैं वही सत्य कह रहा हूँ जो अनादि है,

तब आप यह मत समझ लेना कि कृष्ण कह रहे हैं, मैं वही सत्य कह रहा हूँ जो पुराना है। कृष्ण कह रहे हैं कि मैं वही सत्य कहता हूँ, जो है। अनादि का मतलब इतना ही होता है—मैं वही कहता हूँ, जो है। जिन्होंने पहले जाना होगा, अगर सत्य जाना है तो यही जाना होगा। जो आज जान रहे हैं, यदि सत्य जानेंगे तो यही जानेंगे। जो कल जानेंगे, यदि सत्य जानेंगे तो यही जानेंगे। सिर्फ असत्य नये और पुराने हो सकते हैं। सत्य पुराना और नया नहीं हो सकता। इसलिए सत्य की घोषणा दो प्रकार से हो सकती है।

बुद्ध उन सारे पुराने लोगों की बात नहीं करते जिन्होंने सत्य जाना है। कोई कारण नहीं है। क्योंकि जब बुद्ध स्वयं ही सत्य जान रहे हैं, तब और गवाहियाँ जुड़ाने से कुछ ज्यादा फर्क नहीं पड़ने वाला है। जो वह जान रहे हैं, जान रहे हैं, उसमें कुछ जुड़ेगा नहीं। कि किन-किन ने जाना, इससे सत्य में कुछ जुड़ेगा नहीं। बुद्ध ने जितना सत्य जाना है, जो जाना है, इसमें और हजार लोगों ने भी जाना हो उनका नाम लेने से कुछ 'एडिशन' होने वाला नहीं है। इस सत्य की गरिमा में कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। इस सत्य की प्रतिष्ठा में कोई अंतर पड़ने वाला नहीं है। इसलिए बुद्ध सीधे निपट कहते हैं कि ऐसा जो मैंने जाना, तुमसे कहता हूँ।

और जानकर ही वह पुराने लोगों का नाम नहीं लेते, क्योंकि पुराने लोगों के साथ पुराने लोगों का नाम लेने के साथ बुद्ध के समय तक बड़ा खतरा हो चुका है। क्योंकि बुद्ध अपने सुनने वालों को यह भी कहते हैं कि तुम इसलिए मत मान लेना कि मैं कहता हूँ। तुम इसलिए मत मान लेना कि बुद्ध ने ऐसा जाना है। जब तक तुम न जान लो, तब तक तुम किसने कहा, किसने जाना, इससे कुछ प्रमाण मत जुटा लेना। तो बुद्ध जिससे बोल रहे हैं, वे साधक हैं। बुद्ध जिनसे बोल रहे हैं, वे सत्य की खोज पर निकले हुए लोग हैं। बुद्ध के सामने जो सुनने वाला है वह बहुत भिन्न है, कृष्ण के सामने जो सुनने वाला है उससे। बुद्ध के सामने जो लोग हैं, वे वे हैं जो

सत्य को खोजने निकले हैं। सत्य को खोजने जो लोग निकले हैं, उनसे यह कहना ही होगा कि तुम मेरी मत मान लेना। क्योंकि फिर तुम खोज पर कैसे जाओगे ! और अगर बुद्ध अपने पिछले प्रमाणों को दोहराएँ, तो फिर वे रास्ता बना रहे हैं अपने से पीछे आने वालों के लिए कि वे बुद्ध के प्रमाण को दोहराएँ। इसलिए बुद्ध निपट रूप से पिछले सारे संबंधों की बात ही नहीं करते। वे कहते हैं, ऐसा मैंने जाना है, यह सत्य मैंने देखा है, यह मैं तुमसे कहता हूँ। और तुम भी जान न लो, तब तक बुद्ध ने कहा है इसलिए मत मान लेना।

लेकिन कृष्ण के सामने बहुत दूसरे तरह का आदमी है, वह कोई साधक नहीं है, वह कोई सत्य की खोज पर निकला हुआ व्यक्ति नहीं है। जो व्यक्ति कृष्ण के सामने है, वह बुद्ध के सामने वाला व्यक्ति नहीं है। कृष्ण के सामने जो व्यक्ति खड़ा है उसकी सत्य की कोई खोज नहीं है। वह सिर्फ मोहग्रस्त हुआ है। वह सिर्फ विभ्रमित हुआ है, वह सिर्फ 'कन्फ्यूज्ड' हो गया है, स्थिति ने उसे भयभीत कर दिया है। इसलिए कृष्ण उसके सामने सत्य का अनावरण करने को उतने उत्सुक नहीं हैं, जितना सत्य क्या है यह कहने को उत्सुक हैं। वह अनावरण करने के लिए आया भी नहीं है। इसलिए कृष्ण कहते हैं कि जो मैं तुम्हसे कह रहा हूँ, यह मैं ही तुम्हसे कह रहा हूँ, ऐसा नहीं है, यह और भी पहले औरों ने औरों से कहा है। अगर अर्जुन एक साधक हो, तब तो उसे ही सत्य के साक्षात्कार के लिए कहा जा सकता है। वह कोई साधक नहीं है। वह सिर्फ समझने के लिए आतुर है कि सत्य क्या है, खोजने का कोई सवाल नहीं है अर्जुन के लिए। वह कोई आश्रम में, किसी पहाड़ की कंदरा में, किसी गुरु के पास बैठकर सत्य सीखने नहीं गया है। वह सत्य की खोज में आया ही नहीं है, आया तो वह युद्ध करने है और युद्ध की स्थिति ने उसे भयभीत और डंवाडोल कर दिया है। तो कृष्ण उससे कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूँ ऐसा नहीं है, यह मुझसे पहले औरों ने भी औरों से कहा है। वह जो अनादि है, जो सदा कहा गया है, वही मैं तुम्हसे कह रहा हूँ। अर्जुन

के लिए इसमें अर्थ है। अर्जुन खुद खोजने जाता तो बात और हो जाती, अर्जुन खुद खोजने नहीं जा रहा है। इसलिए कृष्ण केवल सत्य की लंबी धारा की बात उससे कर रहे हैं। वह अर्जुन के मन पर एक चीज साफ करना चाहते हैं कि वे ही उससे नहीं कह रहे हैं।

और इसमें और भी कारण हैं।

बुद्ध के पास जो व्यक्ति आया है, वह बुद्ध की शरण होकर आया है। अर्जुन तो मित्र है, वह अभी कृष्ण की शरण नहीं है वहाँ। और कई बार ऐसा होता है कि बुद्ध के भिक्षुओं ने बुद्ध की बात मान ली, लेकिन बुद्ध की पत्नी ने नहीं मानी। और जब बुद्ध गाँव वापस लौटे और पत्नी उनसे मिली बारह साल के बाद, जबकि वे जगत, दूर-दूर तक सत्य के उद्घोषा हो गये थे, दूर-दूर से लोग उनके चरणों में सत्य की तलाश के लिए आने लगे थे, सारी दुनिया के लिए वे बुद्ध हो गये थे, तब भी जब वे घर लौटे तो उनकी पत्नी के लिए बुद्ध नहीं थे। उनकी पत्नी ने वही बात शुरू की जो बारह वर्ष पहले जब वे घर से गये थे तब की होती। वह उसी तरह नाराज थी और कहने लगी कि तुमने मुझे धोखा दिया, तुम मुझे छोड़कर भाग गये।

बुद्ध की पत्नी का अपना कोण है। और अगर बुद्ध की पत्नी को बुद्ध कहें कि मैं बुद्ध हूँ तो वह कहेगी, छोड़ो ये बात! कोई बुद्ध नहीं है और तुम वही-के-वही हो। बुद्ध की पत्नी के लिए बुद्ध को और तरह बात करनी पड़ेगी। बुद्ध की पत्नी का एक दृष्टिकोण है। एक बहुत मीठी कथा इससे जुड़ी है।

आनंद जब दीक्षित हुआ तो बुद्ध का बड़ा चचेरा भाई था। दीक्षा लेते समय उसने कहा कि मैं कुछ वचनबद्धता आपसे करवा लेना चाहता हूँ, क्योंकि दीक्षा लेने के बाद तो मैं छोटा हो जाऊँगा। अभी मैं बड़ा भाई हूँ और अभी तुम छोटे भाई की हैसियत से मुझे कुछ वचन दे दो, जो बाद में मैं नहीं ले सकूँगा। दीक्षा लेने के साथ ही तो मैं छोटा हो जाऊँगा। तो

अभी मैं बड़ा भाई हूँ और तुम छोटे भाई हो, इसलिए अभी मैं तुमसे कुछ वचन ले लूँ। वह तीन वचन उसने लिए, उसने कहा एक वचन तो यह कि मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। तुम कभी यह न कह सकोगे कि जाओ विहार करो, उस जगह चले जाओ, इस जगह चले जाओ। मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। दूसरा वचन मैं तुमसे यह ले लेता हूँ कि कभी भी मैं किसी को मिलाना चाहूँगा, चाहे आधी रात हो, तो तुम्हें मिलना पड़ेगा। और कोई भी प्रश्न मैं पूछना चाहूँगा, पुछवाना चाहूँगा तो आप, किसी तरह टाल न सकोगे, उस प्रश्न का उत्तर देना ही पड़ेगा। और तीसरी बात, कितनी ही निजी चर्चा किसी से हो रही हो, अगर मैं वहाँ मौजूद रहना चाहूँगा तो मुझे रोका नहीं जा सकेगा। ऐसे तीन वचन उसने बुद्ध से दीक्षा के पहले ले लिये। और छोटे भाई थे, इसलिए इस खेल को उन्होंने निभा दिया। उन्होंने कहा कि ठीक है। अब वह कोई ज्यादा माँग भी नहीं रहा था, दे दिया।

लेकिन बड़ी कठिनाई आयी, बुद्ध को ख्याल में न था, जब वह पत्नी से मिलने गये तब आनंद ने कहा कि मैं साथ नहीं छोड़ सकता। बुद्ध ने कहा, तू बड़ा पागल है, तू थोड़ा तो सोच क्योंकि मैं उसके लिए कोई गौतम बुद्ध नहीं हूँ, मैं उसका पति हूँ। उसके लिए तो अभी भी पति हूँ। और अगर तू मेरे साथ गया तो वह बहुत मानिनी है और बहुत नाराज हो जाएगी कि तुम आए भी बारह साल बाद तो एक आदमी को साथ लेकर आए हो ! यानी मुझे थोड़ा तो मौका दो कि मैं एकांत में बारह साल बाद का सब दुख, पीड़ा, सारा क्रोध निकाल लूँ। तो आनंद से कहा कि माना कि मैंने तुम्हें वचन दिया था, लेकिन तुम्हें प्रार्थना करता हूँ कि तू इस बार कृपा करके उस वचन का आग्रह मत कर।

अब यह तुम्हारे सोचने जैसा है कि बुद्ध का कहना अति मानवीय है, अद्भुत है। आनंद कहता भी है कि आपके लिए भी क्या कोई पत्नी है ? बुद्ध कहते हैं, मेरे लिए नहीं, लेकिन उसके लिए मैं पति हूँ, इसको अभी कैसे मिटाऊँ ? यह मेरे हाथ में नहीं है। ठीक, आनंद दूर खड़ा रह गया

और बुद्ध पत्नी के पास गये और उसने चिल्लाना शुरू किया। बारह साल की लंबी बात थी, बहुत पीड़ाएँ थीं, अचानक रात में बिना कहे उसको छोड़कर भाग गये थे, उसका दुख बिल्कुल स्वाभाविक है। बुद्ध चुपचाप खड़े हैं। वह उसकी सारी बात सुन लेते हैं। फिर वह आँसू पोंछती है और बुद्ध उससे कहते हैं कि तू ठीक से देख, मैं वही नहीं हूँ जो गया था। अब मैं तेरे पति की तरह नहीं आया हूँ, तेरा पति मर चुका। मैं कोई और ही हूँ। अब तू मुझसे बात कर, अब तू किससे बात कर रही है ?

तो कृष्ण और अर्जुन के बीच भेदस्थिति बहुत और है। अर्जुन मित्र है, गले में हाथ डालकर घूमे हैं, खेले हैं, गपशप किये हैं। यहाँ कृष्ण सिर्फ इतना ही कहें कि मैंने जो सत्य जाना है वह मैं तुझसे कहता हूँ, तो वह कहेगा कि जानते हैं हम आपको और आपके सत्य को ! तो कृष्ण उससे कहते हैं कि और भी पहले इस सत्य को औरों ने भी औरों से कहा है, वही मैं तुझसे कह रहा हूँ। मुझे मित्र मानकर तू कहीं इस ख्याल में मत पड़ जाना। इसलिए एक 'पार्टिकुलर सिचुएशन' की बात है, और वह चूक जाए ख्याल से तो आप गलती में पड़ेंगे। बुद्ध वैसी स्थिति में नहीं हैं। बुद्ध कह सकते हैं यह मैं कह रहा हूँ, और किसी ने किसी से कहा हो या न कहा हो इससे मुझे प्रयोजन नहीं है। और तुमसे मैं यह कह देता हूँ कि मेरे कहने से तुम मत मान लेना। इसलिए बुद्ध कोई अहंकार की घोषणा कर रहे हों, ऐसा नहीं मालूम होता। क्योंकि अहंकारी यह कहेगा कि मैं कहता हूँ, इसलिए मान लो। बुद्ध तो निपट निजता की बात कर रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि मैं कहता हूँ, इससे तुम मान मत लेना, लेकिन कहता मैं ही हूँ।

हम जानते हैं कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह औरों ने भी कहा है। हम जानते हैं कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह उपनिषदों ने भी कहा है। हम जानते हैं कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह वेदों ने भी कहा है। लेकिन बुद्ध क्यों जोर देते हैं इस बात पर ? अगर कोई बुद्ध से कहे भी कि यह वेदों में कहा है, उपनिषद में

कहा है, तो बुद्ध कहेंगे कि नहीं, यह मैं ही तुमसे कह रहा हूँ। इसके भी कारण हैं, 'सरकमस्टेंसियल'। क्योंकि बुद्ध के समय तक वेद और उपनिषद की परंपरा बिल्कुल सड़ गयी थी। और वेद-उपनिषद के पक्ष में एक बात भी कहनी उस पूरी परंपरा को सहारा देना था जो बुरी तरह सड़ गयी थी। यह जानते हुए भलीभाँति कि बुद्ध जो कह रहे हैं सारभूत, वही वेद-उपनिषद में कहा गया है, लेकिन फिर भी वेद-उपनिषद का सहारा नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उस सहारे पर एक बहुत बड़ा पाखंड का जाल खड़ा हो गया था, जो जनता को लूट रहा है, घसीट रहा है, गलत रास्तों पर भटका रहा है, अंधविश्वास में डुबा रहा है। इसलिए वेद और उपनिषद के पक्ष में वह बिल्कुल चुप रह जाते हैं।

ऐसा नहीं है कि बुद्ध को यह बौध नहीं होता है, कि ख्याल नहीं होता है। लेकिन कई बार इतिहास में ऐसा वक्त आ जाता है कि कल के सत्यों को आज के सत्यवादी को उखाड़कर फेंकना पड़ता है। क्योंकि कल के सत्य कल के होने की वजह से असत्यों के साथ इस बुरी तरह घुल-मिल जाते हैं कि अब उनको साथ देना उन असत्यों को भी साथ देना है जिनके साथ उनका जोड़ और गठबंधन हो गया होता है। कृष्ण के सामने वैसा सवाल नहीं था। कृष्ण के सामने वेद और उपनिषद की परंपरा जरा भी अशुद्ध नहीं हुई थी, वह अपनी ऊँचाई पर थी, शिखर पर थी। सच तो यह है, इसलिए हम गीता को कह सके कि वह समस्त वेदों और समस्त उपनिषदों का सार है। असल में कृष्ण को हम कह सकते हैं कि उपनिषद ने जो संस्कृति पैदा की थी, उसके वे सारभूत हैं। जो 'एसेंसियल' था उस संस्कृति में, वह सब कृष्ण से प्रगट हो गया है। तो कृष्ण तो उस संस्कृति के शिखर पर पैदा हुए और बुद्ध उस संस्कृति के बिल्कुल पतन के गर्त में पैदा हुए। वही संस्कृति थी, लेकिन बुद्ध उसकी शिखर की आस्था में पैदा नहीं हुए हैं, बुद्ध उसकी बिल्कुल पतन की आस्था में पैदा हुए हैं, जब वह संस्कृति बिल्कुल भूल-धूसरति हो गयी थी और सब सड़ गया था। और ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी नहीं

रह गया था, ब्राह्मण सिर्फ ब्रह्म के नाम पर शोषक हो गया था। और उस संस्कृति के साथ सब कुछ गंदा जुड़ गया था जो कि धर्म का जिससे कोई नाता नहीं है।

इसलिए कृष्ण तो 'पीक' पर पैदा होते हैं। उपनिषद अपनी कीर्ति के शिखर पर हैं। उपनिषद में जो ज्ञान प्रगट हुआ था, उसकी किरणें चारों ओर व्याप्त हैं। हवा और कण-कण में उनकी खबर है। और कृष्ण के लिए उपनिषद कोई मरी हुई बात नहीं है। कण-कण में, हवा-हवा से फूल-फूल में, आकाश की बदलियों में, सब तरफ उपनिषद की गूंज है। उस वक्त जब वह कह सकते हैं, वह कहते हैं तो वह किसी पुराने की गवाही नहीं दे रहे हैं। वह जो मौजूद ही है पूरी तरह, उसकी गवाही दे रहे हैं। लेकिन बुद्ध के वक्त तक यह सब सड़ गया और नष्ट हो गया और लाश पड़ी रह गयी थी। उस लाश की गवाही बुद्ध नहीं दे सकते। इस कारण।

न कोई बुद्ध का अहंकार है और न कोई कृष्ण का अहंकार है कि वह पुराने का समर्थन खोजते हैं। न बुद्ध का अहंकार है कि वह अपनी घोषणा करते हैं।

प्रश्न : भगवान श्री, कृष्ण ने गीता के अध्याय दस में अपने को घोड़ों में उच्चैःश्रवा, हाथियों में ऐरावत, गौवों में कामधेनु, सर्पों में वासुकि, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़, नदियों में गंगा, ऋतुओं में वसंत आदि बताया है। अर्थात् अपने को सर्वश्रेष्ठ बताने का प्रयत्न किया है। तो क्या वे निकृष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते? क्या निकृष्ट वर्ग कृष्ण का रूप नहीं था? उन्होंने निकृष्ट और साधारण का जिक्र क्यों नहीं किया?

यह बड़ा मजेदार सूत्र है। इस सूत्र में दो बातें हैं।

पहली बात तो यह है कि कृष्ण इसमें अपने को सभी में श्रेष्ठ घोषित करते हैं—ऋतुओं में वसंत कहते हैं, हाथियों में ऐरावत कहते हैं, गायों में कामधेनु कहते हैं। लेकिन दूसरी मजे की बात यह भी है कि गाय और घोड़ों जैसे निम्नतम प्राणियों में भी वे अपनी तुलना खोजते हैं। ये दो बातें

एकसाथ हैं। ये दो बातें एकसाथ हैं ! इधर वह हर जाति में अपने को श्रेष्ठ घोषित करते हैं, लेकिन इसकी जरा भी फिक्र नहीं करते कि जाति किसकी है। आखिर ऐरावत भी होंगे तो हाथियों में ही होंगे न, और कामधेनु होंगे तो गायों में ही होंगे न, और वसंत होंगे तो ऋतुओं में ही होंगे न !

ये दो बातें एकसाथ हैं। निम्नतम में भी श्रेष्ठतम है, उसकी वे घोषणा करते हैं। कारण है। इस श्रेष्ठतम की घोषणा क्यों की जा रही है ? ऊपर से देखने पर लगेगा कि अहंकार की बात है—क्योंकि हमें सिवाय अहंकार के कुछ और लगता ही नहीं। भीतर से देखने पर पता चलेगा कि जब प्रत्येक जाति में, प्रत्येक वर्ग में श्रेष्ठ की बात कही जा रही है, तो उसका कुल मतलब ही इतना है कि जब वे कहते हैं हाथियों में ऐरावत हैं, तो वह कहते हैं कि जो हाथी ऐरावत नहीं हो पाये, वे अपने स्वभाव से च्युत रह गये हैं। ऐसे तो हर हाथी ऐरावत होने को पैदा हुआ है। जो वसंत ऋतु नहीं हो पायी, वह ऋतु होने से च्युत हो गयी, उसके स्वभाव से च्युत हो गयी। ऐसे तो हर ऋतु वसंत होने को पैदा हुई है। जो गाय कामधेनु नहीं हो पायी, वह असल में ठीक अर्थों में गाय ही नहीं हो पायी है, अपने स्वभाव से च्युत हो गयी है। कृष्ण इस घोषणा में सिर्फ इतना कहते हैं कि मैं प्रत्येक के स्वभाव की सिद्धि हूँ। जो जो हो सकता है चरम शिखर पर, वह मैं हूँ। इसका मतलब आप समझे ?

इसका मतलब यह हुआ कि जो हाथी ऐरावत नहीं है वह कृष्ण नहीं है, ऐसा नहीं, वह भी कृष्ण है, लेकिन पिछड़ा हुआ कृष्ण है ; वह ऐरावत नहीं हो पाया, जो कि हो सकता है, जो कि वह 'पोटेंशियली' है। कृष्ण यह कह रहे हैं कि सबके भीतर जो 'पोटेंशियलिटी' है, वह मैं हूँ। इसको अगर पूरे सार में हम रखें तो इसका मतलब हुआ कि सबके भीतर जो बीजरूप संभावना है, जो अंतिम उत्कर्ष की संभावना है, जो अंतिम विकास का शिखर है, वह मैं हूँ। और जो इससे जरा भी पीछे छूट जाता है, वह अपने स्वभाव के शिखर से च्युत हो जाता है। वह अपने को पाने से वंचित रह गया

है। इसमें कहीं कोई—कहीं भूलकर भी कोई अहंकार की घोषणा नहीं है। इसका सीधा और साफ मतलब इतना ही है कि तुम जब तक हाथियों में ऐरावत न हो जाओ, तब तक तुम मुझे न पा सकोगे। तुम जब तक ऋतुओं में वसंत न हो जाओ, तब तक तुम मुझे न पा सकोगे। तुम अपने पूरे खिलने में, अपनी पूरी 'फ्लावरिंग' में ही मुझे पाते हो। वह अर्जुन को यही समझा रहे हैं, वह उसको यही कह रहे हैं कि क्षत्रियों में तू पूरा श्रेष्ठ हो जा तो तू कृष्ण हो जाएगा।

अगर कृष्ण कभी हजार-दो हजार साल बाद आते, तो वह जरूर कहते कि क्षत्रियों में मैं अर्जुन हूँ। मगर हजार-दो हजार साल बाद। तो वह जरूर कहते कि क्षत्रियों में मैं अर्जुन हूँ। जब कृष्ण अपने होने की यह घोषणा कर रहे हैं, तो यह श्रेष्ठता का दावा नहीं है। क्योंकि श्रेष्ठता का दावा करने के लिए घोड़ों और हाथियों में जाना पड़ेगा? गायों-बैलों में जाना पड़ेगा? श्रेष्ठता का दावा तो सीधा ही हो सकता है, पर वह सीधा नहीं कर रहे हैं। असल में वह श्रेष्ठता का दावा ही नहीं कर रहे हैं। वह एक जागतिक विकास की बात कर रहे हैं कि जब तुम अपने श्रेष्ठतम रूप प्रगट होते हो, तब तुम प्रभु हो जाते हो।

शब्द है हमारे पास, ईश्वर। ईश्वर शब्द बनता है ऐश्वर्य से ही। जब तुम अपने पूरे ऐश्वर्य में प्रकट होते हो, तो ईश्वर हो जाते हो। ईश्वर तो ऐश्वर्य का ही रूप है। लेकिन हमने कभी सोचा नहीं। ईश्वर का मतलब ही यह है कि गायों में कामधेनु और हाथियों में ऐरावत, और ऋतुओं में वसंत। जब भी कोई अपने पूरे ऐश्वर्य में प्रकट होता है तो वह ईश्वर हो जाता है। ईश्वर का मतलब ही यह है कि जिसकी 'पोटेंशियलिटी' और 'एक्चुअलिटी' में फर्क नहीं है। जिसकी वास्तविकता में और जिसकी संभावना में कोई फर्क नहीं है। जिसके जीवन में संभावना और वास्तविकता एक ही हो गयी है। जो संभावना थी वह पूरी-की-पूरी वास्तविकता बन गयी है, वह ईश्वर है। जिसकी संभावना और वास्तविकता में अंतर है, 'डिस्टेंस' है,

वह अभी ईश्वर की तरफ यात्रा कर रहा है। तो जो मेरे भीतर छिपा है, जिस दिन पूरी तरह प्रगट हो जाएगा, उस दिन मैं अपने ईश्वर को उपलब्ध हो जाता हूँ। लेकिन अभी, जो मेरे भीतर छिपा है, वह थोड़ा-थोड़ा प्रगट होता है। वह पूरा वसंत नहीं बन पाता है। वह सरकता रहता है, वसंत की तरफ सरकता है लेकिन वसंत नहीं हो पाता है। फल पूरा नहीं खिल पाता है। अगर कृष्ण इस बगिया में आएँ और वह कहें कि इन फूलों में मैं सबसे ज्यादा खिला हुआ पूरा फूल हूँ, तो क्या मतलब होगा? उसका मतलब यह हुआ कि दूसरे फूल भी इतने ही खिल सकते थे, नहीं खिल पाये हैं। और उचित ही है कि कृष्ण अधखिले फूल से अपने को नहीं जोड़ते हैं। उचित ही है कि जो अभी कली में बंद है, उससे नहीं जोड़ते। उचित ही है कि जो अभी शाखाओं में छिपा है, उससे नहीं जोड़ते। उचित ही है कि जो बीज में पड़ा है उससे नहीं जोड़ते। वे उससे जोड़ते हैं जो पूरा खिला है, क्योंकि जिससे वे बात कर रहे हैं उसको पूरे खिलाने की ही बात कर रहे हैं कि तू पूरा खिल जा, तू क्षत्रियत्व का पूरा फूल बन जा, तू वसंत हो जा क्षत्रियत्व का। तो तू मुझे पा सकेगा। मुझे पा सकेगा से मतलब, कि तू अपने ईश्वर को पा सकता है।

यहाँ कृष्ण पूरे समय दोहरा काम कर रहे हैं। कृष्ण का पूरा 'रोल डबल' है। इधर वे अर्जुन के साथी हैं, उसके मित्र हैं और इसलिए अर्जुन पर ज्यादा डाँट-डपट नहीं कर पाते हैं, उससे मित्रता की भाषा बोलते हैं, लेकिन साथ-ही-साथ पूरे समय खिले फूल भी हैं। और उनकी इस मित्रता के बीच-बीच में उनकी पूर्णता की घोषणाएँ जगह-जगह से फूट पड़ती हैं और अर्जुन तक पहुँच जाती हैं। और ये दोनों जरूरी हैं। अगर वे निपट मित्र रह जाएँ, तो किसी काम के नहीं रहेंगे, और अगर वे निपट परमात्मा हो जाएँ तो अर्जुन कहेगा कि क्षमा करो, अपनी दोस्ती समाप्त ! इन दोनों के बीच उनको पूरे वक्त तालमेल बिठालना पड़ रहा है। वे अर्जुन के मित्र भी बने रहते हैं और परमात्मा होने की घोषणा भी बीच-बीच में कर जाते

हैं। जब-जब भी उन्हें लगता है कि अर्जुन जरा राजी दिखता है, तब-तब वे परमात्मा होने की घोषणा करते हैं और जब-जब उन्हें दिखता है कि अर्जुन जरा संदिग्ध दिखता है, तब वे फिर कहने लगते हैं, हे महाबाहो ! तब वे फिर उससे मित्रता की बातें करने लगते हैं—हे भारत, हे महाबाहो ! फिर उससे मित्रता की बातें करने लगते हैं, उनका काम बड़ा 'डेलिकेट' और बड़ा नाजुक है। ऐसा नाजुक मौका बहुत कम आया है।

बुद्ध के पास ऐसा नाजुक मौका नहीं है। क्योंकि जो आया है, वह निश्चित है कि कौन है; जो बैठा है, वह निश्चित है कि कौन है, बात सीधी-साफ होती है। महावीर को ऐसा मौका नहीं आता, क्योंकि बातें साफ-सुथरी हैं, सीधा 'डायलॉग' है। उसमें कुछ दोहरे 'रोल' का काम नहीं है। कृष्ण के साथ बड़ी कठिनाई है, वहाँ 'रोल' बड़ा दोहरा है। मित्र के गुरु होना बड़ी कठिन बात है। मित्र को उपदेश देना बड़ी कठिन बात है। मित्र को सलाह देना बड़ी कठिन बात है। क्योंकि वह जो मित्र है, वह कहेगा कि बस बंद करो, ज्यादा ज्ञान मत बंधारो। अर्जुन कह सकता है कि ज्यादा ज्ञान मत बंधारो ! मेरे ही साथ खेले, मेरे साथ बड़े हुए, इतना ज्ञान मत बंधारो। अगर ज्यादा ज्ञान दिखायी पड़े तो अर्जुन छूट जाएगा बाहर। तो कृष्ण जो, पूरे वक्त दोनों काम कर रहे हैं, उसे थपथपाते भी जाते हैं कि हे महाबाहो, और फिर उससे कहते भी चले जाते हैं कि तू अज्ञानी है रे ! तू पहचान नहीं पा रहा है कि असली बात क्या है ! यह दोनों बातें साथ चल रही हैं, इसको ख्याल में लेंगे तो सरलता हो सकती है।

प्रश्न : भगवान श्री, लगभग सभी महापुरुषों का कुछ तो चरित्र वैयक्तिक होता है, और कुछ होता है समष्टिगत। अभी पिछले दिनों में कृष्ण के जीवन पर चर्चा रही, उसमें बहुत कुछ वैयक्तिक विशेषताएँ भी थीं जो कि आज के युग में मुमकिन है कि यदि हम उनका थोड़ा-सा भी अनुकरण करने लगे तो पिट जाने की ही संभावना है और तो कोई दूसरी बात

दिखायी नहीं पड़ती। आज हम किसी की दधि और दूध की मटकी को कंकड़ी मारकर फोड़ नहीं सकते हैं। आज हम कहीं स्नान करती हुई किन्हीं बालाओं के वस्त्र उठाकर भाग नहीं सकते हैं। और तो और, किसी राधा के साथ चाहते हुए भी हम प्रेम नहीं कर सकते हैं। कृष्ण में और चीजें भी हैं। जो समष्टिगत हैं; कृष्ण ने जो कुछ भी कहा है उसका अतीत, वर्तमान और भविष्य के लिए महत्त्व है, ऐसा आपने बताया। इसी संदर्भ में अब हम चाहते हैं कि कृष्ण ने गीता में जो कर्मयोग की बात कही है, अनासक्त योग की बात कही है, उनका जो यह जीवन-दर्शन हमारे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है, जो जीवन जीने की कला सिखाता है, जीवन का एक नया मार्ग हमें देता है और हम जीवन के हर क्षण में उसे व्यवहार रूप में उतार भी सकते हैं, उनके इस जीवन-दर्शन पर विशद रूप से कुछ बातें हमारे सम्मुख प्रस्तुत करें, ताकि हम उनका अनुसरण कर सकें।

पहली बात तो यह ख्याल लेनी चाहिए कि आज कृष्ण का होना कठिन हो गया है, ऐसा नहीं है। उस दिन भी आसान नहीं था। अन्यथा बहुत कृष्ण हो जाते। और आपको कठिन मालूम होता है कृष्ण होना। उस दिन भी इतना ही कठिन मालूम होता—आपको। कृष्ण आज पैदा हों तो आज भी उतना ही सरल होगा—कृष्ण को। लेकिन यह भ्रांति वहाँ से शुरू होती है जहाँ से हम अनुकरण का ख्याल लेते हैं, वहाँ से उप-द्रव शुरू होता है। न तो आप उस दिन कृष्ण का अनुकरण कर सकते थे, न आज कर सकते हैं। कर ही नहीं सकते हैं। और करेंगे तो ठीक कहते हैं कि मुसीबत में पड़ेंगे।

जो सारी उनके जीवन पर चर्चा हुई है, वह इसलिए नहीं कि आप अनुकरण करेंगे। बल्कि इसलिए ही कि इस कृष्ण के व्यक्तित्व के अगर पूरे जीवन को हम समझ पाएँ, तो शायद अपने-अपने जीवन को समझने के लिए सुविधा हो। अनुकरण के लिए नहीं। अगर कृष्ण के व्यक्तित्व का—जो कि बड़ा विराट, बहु-आयामी है—पूरा खुलाव हो जाए, तो

हम अपने व्यक्तित्व को भी खोलने की कुंजी पा सकते हैं। लेकिन अगर आप अनुकरण की भाषा में सोचेंगे, तो आप कृष्ण को नहीं समझ पाएँगे, समझना मुश्किल हो जाएगा। जिसका भी हम अनुकरण करना चाहते हैं, उसे हम समझना तो चाहते ही नहीं। और अनुकरण करना ही हम इसलिए चाहते हैं कि हम अपने को भी समझना नहीं चाहते। किसी को अपने ऊपर आरोपित करके जी लेंगे तो सुविधा होगी, समझने की भ्रंशट से बच जाएँगे। समझने का काम तो वहीं से शुरू होता है, जहाँ से हम न किसी का अनुकरण करना चाहते हैं, न किसी जैसे होना चाहते हैं, बल्कि इस बात का पता लगाना चाहते हैं कि मैं क्या हूँ, और क्या हो सकता हूँ। तो जिन लोगों ने अपनी जिन्दगी में पूरी तरह खुलाव से अपने को प्रगट किया है, उनकी जिन्दगी को समझने से अपनी जिन्दगी को समझने का रास्ता सुगम हो जाता है। इससे जिन्दगियाँ एक नहीं हो जाएँगी, जिन्दगी तो अलग-अलग ही होंगी, अलग-अलग होनी ही चाहिए, कोई होने का उपाय भी नहीं है कि वह एक-जैसी हो जाए।

तो अगर इतनी सारी चर्चाओं में कहीं भूलकर भी आपके मन में अनुकरण का ख्याल रहा है, जैसा कि प्रश्न से लगता है कि रहा होगा, तो आप कृष्ण को नहीं समझ पाएँगे; और कृष्ण को तो समझ ही नहीं पाएँगे, अपने को भी समझना मुश्किल हो जाता है।

दूसरी बात, कृष्ण के विचार, उनके वे सत्य, जो सदा उपयोग के हो सकते हैं; लेकिन उनमें भी मैं आपसे यही कहना चाहूँगा कि वे भी अनुकरणीय नहीं हैं। क्योंकि जब कृष्ण का जीवंत व्यक्तित्व अनुकरण नहीं किया जा सकता, तो शब्दों में प्रगट सिद्धांत और सत्य कैसे अनुकरण किये जा सकते हैं! नहीं, वह भी नहीं किया जा सकता। वह भी समझा ही जा सकता है। हाँ, उसके समझने की प्रक्रिया में आपकी समझ बढ़ती है, और वह समझ आपके काम आ सकती है। सिद्धांत काम नहीं आएँगे, समझ ही काम आएगी। लेकिन हम हर हालत में अनुकरण हमारी माँग होती है।

या तो हम जीवन का अनुकरण करें, या सिद्धांतों का अनुकरण करें, लेकिन अनुकरण हम करेंगे ही ।

तो पहली बात आपसे उनके सिद्धांतों के संबंध में बात करने के पहले यह कह देनी जरूरी है कि जीवन अनुकरणीय नहीं है, इसलिए नहीं कि आज मटकी नहीं फोड़ी जा सकती, इसलिए भी नहीं कि आज प्रेम नहीं किया जा सकता, इसलिए भी नहीं कि आज बांसुरी नहीं बजायी जा सकती, सब किया जा सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है । मटकी फोड़ने से उस दिन भी तकलीफ आती थी, आज भी आएगी । बांसुरी बजाने से उस दिन भी आदमी मुश्किल में पड़ता था, आज भी पड़ेगा । इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है । थोड़े-बहुत भेद होंगे, कोई बहुत बुनियादी फर्क नहीं पड़ता है । इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि अनुकरण नहीं किया जा सकता क्योंकि परिस्थिति बदल गयी है, अनुकरण ही गलत है—परिस्थिति बिल्कुल वही हो तो भी । अनुकरण मात्र आत्मघात है । 'सूसाइडल' है । अपने को मारना हो, आत्महत्या करनी हो, तो ही अनुकरण ठीक है ।

कृष्ण किसका अनुकरण करते हैं ? कोई व्यक्तित्व दिखायी नहीं पड़ता, कृष्ण ने जिसका अनुकरण किया हो । बुद्ध किसका अनुकरण करते हैं ? कोई व्यक्तित्व दिखायी नहीं पड़ता जिसका बुद्ध ने अनुकरण किया हो । क्राइस्ट किसका अनुकरण करते हैं ? कोई दिखायी नहीं पड़ता । बड़े मजे की और बड़े रहस्य की बात है कि उन्हीं लोगों का हम अनुकरण करते हैं जिन्होंने कभी किसी का अनुकरण नहीं किया । यह बड़ी 'एब्सर्ड' बात है । अगर हम उनको समझें तो एक बात तो हमें यह समझ लेनी चाहिए कि ये लोग किसी का अनुकरण नहीं करते हैं । ये सारे-के-सारे अपनी निजता के फूल हैं । और हम ? हम किसी और के फूल के ढंग से खिलना चाहेंगे तो कठिनाई में पड़ जाएंगे । और यह कठिनाई मटकी फोड़ने की कठिनाई, राधा से प्रेम की कठिनाई नहीं है, यह बहुत गहरी कठिनाई है । वे तो बहुत छोटी कठिनाइयाँ हैं । और उसमें तो आप रोज पड़ते रहते हैं, कोई रुकता

नहीं। कोई दूसरों की स्त्रियों से प्रेम करने से रुकता हो, ऐसा दिखायी नहीं पड़ता। कोई अपनी पत्नियों से डर कर दूसरे की पत्नियों का नाम न लेता हो, ऐसा भी दिखायी नहीं पड़ता। पत्नियाँ डराए चली जाती हैं, पति डरे चले जाते हैं; पति डराए चले जाते हैं, पत्नियाँ डरी चली जाती हैं, यह कोई आज की बात नहीं, वह सदा की बात है। असल में जब तक पति और पत्नी रहेंगे तब तक डर रहेगा। पति-पत्नी न हों, इसमें भी बड़ा डर लगता है। आदमी जैसा है वह चूँकि डरा हुआ है, इसलिए उसकी सारी व्यवस्था में डर व्याप्त हो जाता है।

नहीं, यह सवाल नहीं है कि अनुकरण में यह भय है। अनुकरण में जो बुनियादी भय है वह मैं आपसे कह दूँ, फिर कल सुबह से आप प्रश्न उठाइये जीवन-सत्यों के संबंध में। क्योंकि जीवन के संबंध में मैं चर्चा नहीं कर रहा था, आप प्रश्न उठा रहे थे। कल सुबह से आप प्रश्न उठाइये उनके दर्शन और सत्यों के संबंध में, उसकी चर्चा कर लूँगा। जो अनुकरण का बुनियादी भय है, वह यह है कि इस जगत में दो व्यक्ति एक-जैसे नहीं हैं, न हो सकते हैं। वेजोड़ हैं, अद्वितीय सब हैं। कोई तुलना का उपाय नहीं। बस आप आप ही हैं, और आप जैसा पहले कभी नहीं हुआ और आप जैसा बाद में कभी नहीं होगा। असल में आपका कोई साँचा भगवान के पास नहीं है, जिस साँचे में और लोग ढाले जा सकें। और जब भी आप अपनी इस निजता को अस्वीकार कर देंगे और किसी जैसे होने की कोशिश करेंगे, तो जो भूल भगवान ने नहीं की, वह आप करेंगे। उसने आपको बनाया व्यक्ति, और आप 'कॉपी' बनने की कोशिश में लग जाएँगे। उसने आपको दी निजता और आप पराये को ओढ़ने में लग जाएँगे। वह कठिनाई है।

लेकिन अब तक सभी धर्म अनुकरण पर जोर देते रहे हैं। सभी, सारी दुनिया में माँ-बाप, शिक्षक-गुरु सिखाते रहे हैं, किसी जैसे हो जाओ, बस अपने जैसे भर मत होना ! एक भूल भर मत करना, बाकी सब करना !

कृष्ण जैसे हो जाना, राम जैसे हो जाना, बुद्ध जैसे हो जाना, बस एक भूल भर मत करना, अपने जैसे मत हो जाना। क्या कारण है ? ये सारी दुनिया की शिक्षाएँ किसी आदमी को यह नहीं कहतीं कि अपने जैसे हो जाओ। कुछ कारण है।

बड़ा कारण तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अगर अपने जैसा हो जाए, तो खतरा है, समाज को, गुरुओं को, माँ-बाप को, व्यवस्थापकों को, सबको खतरा है। क्योंकि कौन कैसा हो जाएगा, इसके बाबत पहले से सुनिश्चित नहीं हुआ जा सकता। लेकिन राम जैसे हो जाओ, इसमें खतरा नहीं है। राम के बाबत हम सुनिश्चित हैं, हमें पता है पक्का कि राम क्या करते हैं, क्या नहीं करते हैं। ऐसा ही तुम भी करो, ताकि तुम खतरनाक न रह जाओ। तुम्हारे बाबत 'प्रोडिक्शन' हो सके, तुम्हारे बाबत घोषणा हो सके कि तुम ऐसा करोगे। और जिस दिन तुम न करो, तो हम तुम्हें अपराधी ठहरा पाएँ। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपने जैसा हो, तो बहुत मुश्किल हो जाएगा तय करना कि क्या अपराध है और क्या अपराध नहीं है। क्या पाप है, क्या पुण्य है; क्या ठीक है, क्या गलत है; बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसलिए समाज की जड़ व्यवस्था को इसी में सुविधा है कि सब साफ-सुथरी रेखाएँ रहें, चाहे जिंदगी कट जाए और लोग मर जाएँ, और चाहे उनके व्यक्तित्व समाप्त हो जाएँ और उनकी आत्माएँ दीन हो जाएँ, इसकी कोई चिंता नहीं, लेकिन व्यवस्था !

ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य समाज के लिए जी रहा है, समाज मनुष्य के लिए नहीं जी रहा। शिक्षा मनुष्य के लिए नहीं है, मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि लोग उसको शिक्षा दे सकें। सिद्धांत मनुष्य के काम में आएँ इसलिए नहीं हैं, मनुष्य इसलिए पैदा किया गया है कि सिद्धांतों के काम में आ सके। धर्म मनुष्य के लिए नहीं है, मनुष्य धर्म के लिए है। मनुष्य को नीचे रखते हैं, साधन बनाते हैं और मनुष्य के ऊपर सब चीजों को थोप देते हैं। खतरा यह है। अनुकरण का खतरा परिस्थितिगत खतरा

नहीं है, आत्मगत खतरा है। अनुकरण का खतरा अपने को घीरे-घीरे मारने और 'पाइजनिंग' का खतरा है, अपने को घीरे-घीरे जहर देने का खतरा है; और उस जहर पर आपने कृष्ण का 'लेबल' लगा रखा है, कि बुद्ध का, कि महावीर का, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

दुनिया में कोई 'टाइप' नहीं है जिसमें सबको ढलना है। प्रत्येक को अपने जैसा होना है। इसलिए कृष्ण पर जो मैं बात कर रहा हूँ, कोई भूल कर यह न समझ ले कि मैं आपसे कह रहा हूँ आप कृष्ण जैसे हो जाएँ। नहीं, बाहर से जो मुसीबतें आएंगी वे गौण हैं, भीतर से जो मुसीबत आएंगी वही असली है। आप बिना मुर्दा हुए कृष्ण जैसे नहीं हो सकते। और मुर्दे अगर पिट जायें, तो आश्चर्य है कुछ! मुर्दे पिटेंगे ही। वह जो डर है पिटाई का, वह मुर्दा होने का डर है। जिंदा आदमी तो जैसा होता है, होता है। और जितना जिंदा आदमी होता है, उतना ही जैसा होता है, वैसा ही होता है।

और बड़े मजे की बात है कि जो समाज जिंदा आदमी की निंदा से शुरू करती है यात्रा, वह प्रशंसा पर पूरी करती है। सदा ऐसा हुआ है। जिंदा आदमी को गाली से हम प्रारंभ करते हैं, उसकी निंदा से शुरू करते हैं और अखीर में पूजा पर अंत होता है। यह हमारा ढंग है। यह बात दूसरी है कि वह जिंदा आदमी पूरा जिंदा न हो, बीच से लौट जाए, यह बात दूसरी है। अगर वह जिंदा आदमी पूरा है, तो आपकी गाली पूजा तक पहुँचेगी ही, सदा पहुँचती रही है। उसका अपना 'लाजिक' है। हाँ, अगर वह मुर्दा आदमी है तो डर जाएगा, गाली से लौट जाएगा, पूजा तक नहीं पहुँच पाएगा। यह उसका कसूर है। इसमें आपकी कोई गलती नहीं है। आपने तो ठीक शुरुआत की थी, वह बीच से भाग गया।

कृष्ण को इससे कोई फिक्क नहीं पैदा होती। क्या आप सोचते हैं, कृष्ण भगवान की तरह स्वीकृत हो गये थे उस दिन? नहीं; कृष्ण पर सब दोषारोपण थे। और आज भी अगर आप अपनी आँख बचाकर ही चलें

तो ही दोषारोपण से बच सकते हैं कृष्ण पर, अन्यथा बहुत मुश्किल है मामला ! सब दोषारोपण थे । और जीसस को जब सूली दी गयी तो जिन लोगों ने सूली दी थी उन्होंने एक आवारा आदमी को सूली दी थी । और जीसस को जब सूली पर लटकाया, तो दोनों तरफ दो चोर भी लटकाए थे । अकेला नहीं जीसस को सूली दी थी । तीन 'क्रॉस' खड़े किये थे, बीच में जीसस को लटकाया था, दोनों तरफ दो चोर भी लटकाए थे । इस बात की सूचना के लिए कि जीसस की हैसियत हम चोरों से ज्यादा नहीं समझते हैं । और मजे की बात यह है कि और लोगों ने मजाक किया हो, एक चोर ने भी मरते वक्त आखिरी समय जीसस से मजाक किया था । और उस चोर ने भी कहा था कि अब तो हम साथ-ही-साथ मर रहे हैं, बड़ा संबंध हो गया, अगर तुम्हारे प्रभु के राज्य में आऊँ तो जरा जगह मेरे लिए बना देना ! वह भी संदिग्ध है कि कहाँ का प्रभु का राज्य और कहाँ का क्या ! चोर ज्यादा आश्वस्त था । वे लोग जो सूली पर लटका रहे थे, वे ही नहीं निश्चित थे कि यह आदमी आवारा ओर फिजूल है, वे चोर भी यही समझ रहे थे—तुमसे बेहतर तो हमीं हैं । कुछ करके मर रहे हैं, तुम बिना ही किये मरे जा रहे हो ।

कृष्ण या क्राइस्ट को, या महावीर या बुद्ध को उनका समाज एकदम से उन्हें भगवान नहीं कह देता है । गालियों से शुरू करता है । पर वे जिंदा आदमी हैं, वे गालियाँ पिए चले जाते हैं, फिर कब तक आप गालियाँ देंगे ? और जो आदमी गालियाँ पिए ही चला जाता है, फिर धीरे-धीरे आप उसका सम्मान करने लगते हैं । फिर वह सम्मान को भी पीता चला जाता है, वह उससे भी प्रभावित नहीं होता है, तब फिर आप उसको भगवान बनाने में लग जाते हैं ।

कृष्ण की चर्चा मेरे लिए इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि आप उनका अनुकरण करने जाएँ, इसलिए महत्वपूर्ण है कि ऐसा व्यक्ति, इतना 'मल्टी-डायमेंसनल' व्यक्ति पृथ्वी पर नहीं हुआ । इस बहु-आयामी व्यक्तित्व के

अगर सारे खजाने आपके सामने खुल जाएँ, तो आपको अपने खजाने खोलने का ख्याल आ सकता है। वस, इससे ज्यादा नहीं। आपके खजाने आपके होंगे, और कोई नहीं कह सकता कि आपके खजाने कृष्ण से ज्यादा गहरे और ज्यादा समृद्ध नहीं होंगे। वह कोई सवाल नहीं है। लेकिन जो कृष्ण के भीतर घटित हुआ, वह किसी और के भीतर भी घटित हो सकता है इसका स्मरण ही काफी है। उस स्मरण के लिए ही सारी चर्चा है।

लेकिन आप पूछते हैं कि जीवन सिद्धांत। हमारा मन होता है कि कोई सिद्धांत मिल जाएँ तो उनको आरोपण करना आसान होगा। उनके सिद्धांतों की कल सुबह से हम चर्चा करेंगे, लेकिन वह भी आरोपण के लिए नहीं। वह भी जिंदगी को समझने के लिए। कृष्ण जैसे लोग जब पैदा होते हैं, तो जिंदगी को बड़ी गहराई से देखते हैं, और गलती होगी यह कि हम उनकी आँख-में-आँख डालकर थोड़ी देर जिंदगी को न देखें। उनकी आँख-में-आँख डालकर जिंदगी को देख लेने से हमारी भी देखने की क्षमता हमारा 'पर्सपेक्टिव' बदलता है। यह मनाली आप आए हैं। यह चारों तरफ पहाड़ हैं, लेकिन आपके पास जितनी आँख है और जितना 'पर्सपेक्टिव' है उतना सौंदर्य ही तो इन पहाड़ों में दिखायी पड़ेगा? यहीं निकोलस रोरिक भी था, उसके चित्र आप देख आएँगे तो ये पहाड़ कुछ और कहते हुए मालूम पड़ने लगेंगे तत्काल, क्योंकि उसकी आँख में से आपने आँख डालकर देखना शुरू कर दिया। और वह निकोलस रोरिक ठेठ रूस से यात्रा करके इन पहाड़ों में आ गया था। और आज तो रास्ता है, तब तो रास्ता भी नहीं था। और तब फिर वह जिंदगी भर यहीं रह गया था। इस हिमालय ने उसे बिल्कुल ही पागल कर दिया था। जहाँ तक मेरा ख्याल है, आपको काफी दिन हो गये हिमालय में आए और अब शायद ही आपको पहाड़ियाँ दिखायी पड़ती होंगी। पहले दिन दिखायी पड़ी होंगी—थोड़ी बहुत देर—अब नहीं दिखायी पड़ती होंगी। अब बात खतम हो गयी है। पहाड़ हैं, ठीक है, बात खतम हो गयी। लेकिन निकोलस

जिंदगी भर लगा रहा यहाँ। और एक ही पहाड़ों को पोतता रहा, रंगता रहा, जिंदगी भर। और पहाड़ नहीं चुके, और निकोलस का मन नहीं चुका। तो निकोलस से अगर आप देख पाएँगे एक दफा, तो ये पहाड़ आप को कुछ और कहते दिखायी पड़ने लगेंगे। एक आदमी ने जिंदगी भर इन्हीं को देखने में लगाया। और हजार रंगों में इन पहाड़ों को देखा। सैकड़ों ढंगों से इन पहाड़ों को देखा—कभी चाँद में, कभी अँधेरे में, कभी सूरज में, कभी वर्षा में, कभी बर्फ में, कभी धूप में। और उस आदमी ने अपने भी हजार रंगों में इन पहाड़ों को देखा। और जिंदगी भर बस इन पहाड़ों को ही रंगता रहा। आखिरी वक्त, मरते वक्त भी इन पहाड़ों को ही रंग रहा था। इस आदमी को अगर आप थोड़ा परिचित हो लेंगे, इन पहाड़ों के बीच में खड़े होकर आपको इन पहाड़ों में कुछ और दिखायी पड़ने की संभावना शुरू होती है। मैं नहीं कहता कि निकोलस ने जैसा देखा वैसा आप देखना—आप देख भी नहीं सकते, उपाए भी नहीं हैं—लेकिन निकोलस को जानने के बाद ये पहाड़ सिर्फ साधारण पहाड़ नहीं रह जाँएँगे जो एक दफे देखकर चुक जाते हैं।

प्रेम तो बहुत लोगों ने किया है, लेकिन कभी फरहाद और मजनों को पढ़ लेना उपयोगी है। हमारा प्रेम जल्दी चुक जाता है। पता ही नहीं चलता कब चुक गया। ठीक से याद भी नहीं कर सकते कि कभी था। सब रूखा-सूखा रह जाता है भीतर। नदी आने के पहले ही विदा हो जाती है और मरुस्थल हो जाता है। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी रहे हैं जो कि जिंदगी भर प्रेम किये ही चले गये हैं। और इनके प्रेम का कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। अगर इन प्रेम करने वालों से आप थोड़े परिचित हुए तो अपने प्रेम को समझने में बड़ी सुविधा हो जाएगी और हो सकता है कि आपके भीतर भी कोई धारा अंतर्गम में बहती हो और उसका स्मरण आ जाए। ऐसा नहीं कि आप मजनों हो जाएँगे। उसका कोई उपाय नहीं है। होना भी नहीं है। और हुआ हुआ मजनों क्या मजनों हो सकता है? बाल वगैरह

लटका लेगा मजनूँ की तरह, कपड़े-लत्ते पहन लेगा मजनूँ की तरह, सड़क पर गुजरने लगेगा, चिल्लाने लगेगा—लैला, लैला; नहीं सब बेकार होगा। उसमें कोई मतलब नहीं होगा। उसके भीतर से तो कहीं कुछ आएगा नहीं।

लेकिन, आपका भी अपना प्रेम है जो मजनूँ और फरहाद के प्रेम से शायद सजग हो जाए, सुलग जाए। शायद बारूद आग पकड़ जाए और आपको भी पता चले कि मैं भी ऐसे ही चुक जानेवाला नहीं हूँ, मेरे भीतर भी कोई धारा है। उसी अर्थ में कह रहा हूँ। बहुत लोगों ने भीत लिखे हैं, लेकिन कालिदास या रवीन्द्रनाथ का गीत पढ़कर आपको पहली दफा कुछ दिखायी पड़ना शुरू होता है, जो आपको शायद कभी दिखायी नहीं पड़ा था। वह आपकी भी संभावना थी। लेकिन प्रषुप्त थी।

तो कृष्ण के सिद्धांतों की कल सुबह से हम बात करेंगे इस आशा में नहीं कि आप उनको मानकर और सिद्धांतवादी हो जाएँ—कृष्ण जैसा गैर-सिद्धांतवादी आदमी नहीं है; इसलिए इस उपद्रव में पड़ना ही नहीं। कृष्ण को समझने का कुल मतलब इतना है कि जब ऐसा महिमा का पूरा खिला हुआ आदमी जगत को देखता है, तो वह क्या कह जाता है, उसकी 'वर्डिकट' क्या है, क्या कह जाता है इस जगत के बाबत? इस आदमी के चित्त की गहराइयों के बाबत वह क्या खबर दे जाता है? इस आदमी के खिलने के संबंध में वह क्या सूचनाएँ दे जाता है? वे सूचनाएँ शायद आप के अंतर्गम में पड़ी हुई किन्हीं धाराओं को छू दें; तो ऐसा नहीं है कि फिर आप कृष्णवादी हो जाएंगे, बस ऐसा ही है कि आप अपने होने की यात्रा पर निकल जाएंगे। तभी आप समझ पाएंगे कि यह आदमी, जो स्वघम में मर जाने को कहता है, यह आदमी आपके ऊपर सिद्धांत थोपने वाला आदमी नहीं हो सकता है।

तो कल से आप पूछें। जो आप पूछ लेंगे, उसकी मैं बात कर लूंगा। मुझे इसमें सुविधा पड़ती है कि आप पूछ लेते हैं। क्योंकि इसमें मुझे सोच-

विचार की भंभट नहीं रह जाती। नहीं तो मुझे सबसे बड़ी दिक्कत यही हो जाती है कि क्या कहूँ ? ऐसे जब तक आपसे बोलता हूँ, तभी तक शब्द और विचार मेरे साथ होते हैं। जब नहीं बोल रहा हूँ तब मैं खाली हो जाता हूँ। तो मुझे बड़ी कठिनाई होती है, कि कहूँ क्या ? आप कुछ पूछ लेते हैं, खूँटी बन जाते हैं, मुझे टाँगने की सुविधा हो जाती है। तो मुझे बहुत ही कठिन मामला है वह कुछ बोलना। उसके लिए बड़ी मुश्किल से मुझे श्रम उठाना पड़ता है। क्या बोलना है ! तो अपनी तरफ से मेरा बोलना तो बहुत मुश्किल होता जा रहा है। इधर मित्रों ने, बहुत मित्रों ने कहा है कि आप कुछ स्वतंत्र रूप से बोल दें। वह मेरे लिए मुश्किल होता जा रहा है। और ज्यादा दिन अब मैं स्वतंत्र रूप से नहीं बोल सकूंगा, उसमें बहुत कठिनाई पड़ती है। क्योंकि मुझे समझ ही नहीं पड़ता है, समझ ही खो गयी है। आप पूछ लेते हैं, तो कोई उपाय नहीं रह जाता, मुझे 'रिसपांड' करना पड़ता है। आप नहीं पूछते हैं, तो मेरे पास कोई उपाय नहीं कि क्या बोलना है, बोलने को क्या है ! अपनी तरफ से मैं अब चुप हूँ, आपकी तरफ से ही बोल रहा हूँ। इसलिए कल सवाल उठा लेंगे। जो सवाल आप उठा लेंगे, उनकी हम बात कर लेंगे।

अब हम ध्यान के लिए बैठेंगे।



डायमंड पाकेट बुक्स में

महावान श्रीरजनीश की आलौकिक पुस्तकें

गुरु गोविन्द बोज खड़े	10.00
हीरा पायो गांठ गठियायो	10.00
मेरे तो गिरधर गोपाल	10.00
राम नाम रस पीजै	10.00
रान नाम निज औषधि	10.00
दादू सहजै देखिए	10.00
नहीं जोग नहीं जाप	10.00
तेरा साईं तुझ में	10.00
योग दर्शन-5	5.00
योग दर्शन-6	5.00
योग दर्शन-7	5.00
योग दर्शन-8	5.00
कृष्ण और हंसता हुआ धर्म	10.00
कृष्ण : साधना-रहित सिद्धि	10.00
कृष्ण : जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि	10.00
कृष्ण : गुरु भी, सखा भी	10.00
साक्षी कृष्ण और रासलीला	10.00



डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

आनंद-गंगा
अमृत-वर्षा
भारत, गांधी और मैं
चेतना का विज्ञान
चित् चक्रमक लागे नहीं
चेतना का सूर्य
हरिया देखे जानिए
एक नया द्वार
गहरे पानी पंछ
काम, ध्यान, अध्यात्म
क्रान्ति-वोज

बया ईश्वर मर गया है ?
कहना और क्रांति
मैं कौन हूँ ?

महावीर : अहिंसा, अहंकार और मोक्ष

महावीर : भोग और त्याग

महावीर : प्रेम और मोक्ष

महावीर : ब्रह्मचर्य, कर्मवाद और पुनर्जन्म
मैं कहता आत्मन देखी

मिट्टी के दिए

मृत्यु द्वे द्वार अमृत का

नव-सन्ध्याम क्या ?

नये भारत की ओर

नानक दृष्टिया सब संसार

नये भारत की खोज

प्रभु की पगडिडियाँ

गिरह हमारा मुन्न में

जीवन-रम-गंगा

जीवन-दर्शन

ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान

जीवन-मृत्यु

जीवन-संगीत

जीवन की खोज

जीवन-रहस्य

जीवन-गीत

सूची ऊपर मेज पिया को

गुल्ल नहीं, आनंद

शून्य के पार

शून्य की नाव

सत्य की खोज

संपर्क

पप के प्रदीप

प्रेम और विवाह

पप की खोज

प्रेम-गंगा

प्रभु मंदिर के द्वार पर

प्रेम-दर्शन

रोम-रोप रम पीजिए

समाजवाद से सावधान

समाजवाद अर्थात् आत्मघात

संभावनाओं की आहूत

शून्य का दर्शन

संभोग समाधि एक समान

समृद्ध समाना बुंद में

शून्य समाधि

संशोध के क्षण

त्याग

तमसो मा ज्योतिर्गमय

युवक और सेक्स

योन शक्ति

*पुस्तकें अब आउट आफ प्रिंट हैं

(सा) सामान्य संस्मरण (डो) डोलस संस्मरण

पाक्षिक प्रकाशन

वार्षिक शुल्क

प्रकाशन तिथि

रजनीश टाइम्स (हिन्दी)

60 रुपये

11 तथा 25

रजनीश टाइम्स (अंग्रेजी)

60 रुपये

11 तथा 25

साहित्य की समस्त जानकारी, आर्डर एवं राशि भेजने
के लिए सम्पर्क सूत्र :

रजनीशघान

17 कोरेगांव पार्क, पुना-411001 (महाराष्ट्र)

फोन : 60953, 60954, 60963

नवीनतम पुस्तकें

1. फिर अमरित की बुंद पड़ी (प्रश्नोत्तर)

2. फिर पत्तों की पंजिब बजी (प्रश्नोत्तर)

3. तंत्र-सूत्र भाग 7

4. तंत्र-सूत्र भाग 8

5. रजनीश ध्यान योग

6. कोपले फिर फूट आएँ

7. मूलभूत मानवीय अधिकार

8. मूलभूत मानवीय अधिकार (गुजराती)

9. मूलभूत मानवीय अधिकार (मराठी)

डायमण्ड पॉकेट बुक्स में प्रकाशित

अनवरत रजनीश की अन्य पुस्तकें

पुनर्जीवित होज पाऊँ (कबीर साहिब)

हीरा पत्थर की मंडियाँ (कबीर साहिब)

देता पाई दुःख के (कबीर साहिब)

छान काम सब कीर्ति (कबीर साहिब)

देर ना मिलवर दोस्त (कबीर साहिब)

छान सावनिव सोसब (कबीर साहिब)

रसु लखे रेखा (कबीर साहिब)

पाकेट बुक्स

1. तंत्र-सूत्र भाग 1
2. तंत्र-सूत्र भाग 2
3. तंत्र-सूत्र भाग 3
4. तंत्र-सूत्र भाग 4
5. तंत्र-सूत्र भाग 5
6. तंत्र-सूत्र भाग 6
7. ध्यान-सूत्र
8. चेति सके तो चेति
9. बग हंसा उस देश
10. कहा कहूं उम देस को
11. पंथ प्रेम को अटपटो
12. क्या सोवें तू वावरी
13. आत्म-पूजा उपनिषद भाग 1
14. आत्म-पूजा उपनिषद भाग 2
15. आत्म-पूजा उपनिषद भाग 3
16. माटी कहे कुम्हार मुं
17. *हसिबा सेलिवा घरिवा ध्यान
18. *रजनीश ध्यान योग
19. *रजनीश ध्यान दर्शन
20. *नये समाज की खोज
21. *जीवन हो है प्रभू
22. योग-दर्शन भाग 5
23. योग-दर्शन भाग 6
24. योग-दर्शन भाग 7
25. योग-दर्शन भाग 8
26. *केनोपनिषद भाग 1
27. *केनोपनिषद भाग 2

भगवान श्री रजनीश का साहित्य जो अब उपलब्ध नहीं है :

1. अमृत-कण
2. अज्ञात के आयाम
3. अवधिगत सन्धास
4. अहिमा दर्शन
5. आचार्य रजनीश: समन्वय विप्लवेयन संसिद्धि
6. बिखरे फूल
7. भगवान मार्ग और मैं
8. दाई आखर प्रेम का
9. घाट मूलाना वाट बिनु
10. हमना मना है
11. ज्यो को त्यों घरि दोन्ही बदरिया
12. जो घर बार अपना
13. जीवन क्रान्ति के फूल
14. जीवन क्रान्ति की दिया

15. कुछ ज्योतिर्मय क्षण
16. क्रान्ति की नई दिशा, नई बात
17. क्या है मार्ग? ज्ञान भक्ति या कर्म
18. काम योग धर्म और गांधी
19. मिट्टी के दीये
20. महावीर और मैं
21. मुल्ला नसरुद्दीन
22. मेडिसिन और मेडिटेशन
23. महावीर : परिचय और वाणी
24. नये संकेत
25. न आँखों देखा न कानों सुना
26. प्रेम के पक्ष
27. प्रेम के फूल
28. प्रेम है द्वार प्रभु का
29. पूर्व का धर्म: पश्चिम का विज्ञान
30. परिवार नियोजन : एक दार्शनिक चिन्तन
31. पद पुष्कर बांध
32. प्रेम के स्वर
33. पायेय
34. सिंहनाद
35. शान्ति की खोज
36. सत्य की पहली किरण
37. समाधि के द्वार पर
38. मूली ऊपर सेज पिया की
39. समुंद समाना बुंद में
40. संसार के कदम परमात्मा की ओर
41. सारे फासले मिट गये
42. व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज
43. विवाह और परिवार
44. योग : नये आयाम

अन्य पाकेट बुक्स

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े
 होरा पायो गांठ गठियायो
 राम नाम रस पीजे
 मेरे नो गिरघर गोपाल
 अमृत की दिशा
 अनयाया
 आप कहाँ हैं ?
 अनन्य जीवन की ओर
 आठ गहर यों भूमते
 अमृत-द्रार
 अपने माहि टटोन
 आँखो देखी माँच
 अनभव क्रान्ति

7. सत्यममि (पन्न-संकलन)
8. धिब-सूत्र (सा)
9. ज्ञातो भक्ति जिज्ञासा भाग 1 (शाब्दिक्य) (सा)
10. ज्ञातो भक्ति जिज्ञासा भाग 2 (शाब्दिक्य, (ड'))

उत्त वाधी

1. सुनो भाई साधो (कबीर) (सा)
2. *कहे कबीर दिवाना (कबीर) (सा)
3. *मेरा मुझसे कुछ नहीं (कबीर) (सा)
4. कहे कबीर मैं पूरा पाया (कबीर) (सा)
5. होनी होय सो होय (कबीर) (डी)
6. *गुने केरी सरकरा (कबीर)
7. *कस्तूरी कुण्डल बसे (कबीर)
8. पिय-पिय सागी प्यास (दादू) (डी)
9. पिय-पिय सागी प्यास (दादू) (सा)
10. सबै सयाने एक मत (दादू) (डी)
11. *अकथ कहानी प्रेम की (कबीर) (डी)
12. जगत तरैया भोर की (दयाबाई) (सा)
13. जगत तरैया भोर की (दयाबाई) (डी)
14. एक झोंकार सतनाम (नानक) (सा)
15. *मैंने राम रतन घन पायो (मीरा)
16. झुक भाई बदरिया सावन की (मीरा) (डी)
17. फन घोरे कांकर घने (मलूकदास) (डी)
18. फन घोरे कांकर घने (मलूकदास) (डी)
19. रामदुवारे जो मरे (मलूकदास) (डी)
20. कानो सुनी सो झूठ सब (दरिया) (डी)
21. बमी झरत बिगसत फाँवस (दरिया) (डी)
22. *बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
23. अजहूँ चेत गंवार (सहजोबाई)
24. सपना यह संसार (पलटू) (डी)
25. काहे होत अधीर (पलटू) (डी)
26. नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास) (डी)
27. जस पनिहार घरे सिर गागर (धरमदास)
28. का सोवै दिन रैन (धरमदास) (डी)
29. संतो मगन भया मन मेरा (रज्जय) (डी)
30. हरि बोली हरि बोल (सुन्दरदास) (डी)
31. ज्योति से ज्योति जले (सुन्दरदास) (डी)
32. नाम सुमिर मन बाधे (जगजीवन) (डी)
33. धरी, मैं तो नाम के रंग छकी (जगजीवन)
34. कहे बाजिद पुकार (बाजिद) (डी)
35. मरो हे जोगी मरो (गोरख) (डी)
36. महज योग (सरहपा-तिलोपा) (डी)
37. बिहहिनी मंदिर दियना बार (यारी) (डी)
38. दरिया कहे सन्द निरवाना
(दरियादास बिहारवाले) (डी)

39. प्रेम-रंग रस ओढ़ बदरिया (झलन) (डी)
40. हुंमा तो मोती चुनै (लाल) (डी)
41. गुप्त-परताप साध की संगति (चीला) (डी)
42. मन ही पूजा मन ही धूप (रंदास) (डी)
43. भरह दसहुँ दिस मोती (गुलाल) (डी)

प्रश्नोत्तर

1. नहीं राम बिन ठांव (डी)
2. नहीं राम बिन ठांव (सा)
3. प्रेम-पंथ ऐसी कठिन (डी)
4. उरमव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र (डी)
5. मरघोर्मा अमृतं गमय (डी)
6. प्रीतम छवि नैनन बसी (डी)
7. रहिमन धागा प्रेम का (डी)
8. उरियो पंख पसार (डी)
9. सुमिरन मेरा हरि करे (डी)
10. पिय को खोजने मैं बत्ती (डी)
11. साहेब मिल साहेब भये (डी)
12. साहेब मिल साहेब भये (सा)
13. जो बोलें तो हरिकथा (सा)
14. बहुरि न ऐसा दांव (सा)
15. ज्यू पा र्यू ठहराया (डी)
16. ज्यू पा र्यू ठहराया (सा)
17. ज्यू मछली बिन नीर (सा)
18. दीपक बारा नाम का (सा)
19. अनहद में बिसराम (सा)
20. सगन महरत झूठ सब (सा)
21. सहज आसिकी नहि (सा)
22. पीवत रामरस लगी खुमारी (सा)
23. रामनाम जान्यो नहीं (सा)
24. सांच सांच सो सांच (सा)
25. आपुई गई हिराय (सा)
26. *बहुतेरे हैं पाट
पुराने प्रबचन
1. जिन खोजा तिन पाइयां (सा)
2. मैं मृत्यु सिलाता हूँ (सा)
3. साधना-पथ (सा)
4. नेति-नेति (सा)
5. सम्भोग से समाधि की ओर (सा)
6. भारत के जसते प्रधान (सा)
7. योग दर्शन भाग 1-2 (सा)
8. *मैं कहता आखन देखी भाग 2 (सा)
9. रेश कबीरा रोया (डी)
10. *शिक्षा में कति (सा)

भगवान श्री रजनीश का सम्पूर्ण साहित्य

महावीर

उपनिषद्

1. सर्वसार उपनिषद् (सा)
2. कैवल्य उपनिषद् (सा)
3. अध्यात्म उपनिषद् (डी)
4. अध्यात्म उपनिषद् (सा)
5. कठोपनिषद् (डी)
6. असतो मा सद्गमय (सा)
7. *इशवास्योपनिषद् (सा)

कृष्ण

1. गीता-दर्शन अध्याय 1-2 (डी)
2. गीता-दर्शन अध्याय 3 (सा)
3. गीता-दर्शन अध्याय 4-5 (डी)
4. गीता-दर्शन अध्याय 6 (डी)
5. गीता-दर्शन अध्याय 6-5 (डी)
6. गीता-दर्शन अध्याय 8 (सा)
7. गीता-दर्शन अध्याय 9-10 (डी)
8. गीता-दर्शन अध्याय 10 (सा)
9. गीता-दर्शन अध्याय 10 (डी)
10. गीता-दर्शन अध्याय 11 (सा)
11. *गीता-दर्शन अध्याय 12
12. *गीता-दर्शन अध्याय 13-14
13. गीता-दर्शन अध्याय 15-16 (डी)
14. गीता-दर्शन अध्याय 15-16 (सा)
15. *गीता-दर्शन अध्याय 17
16. गीता-दर्शन अध्याय 18 (डी)
17. गीता-दर्शन अध्याय 18 (सा)
18. कृष्ण : मेरी दृष्टि में भाग 1 (सा)
19. कृष्ण : मेरी दृष्टि में भाग 2 (सा)

अष्टावक्र

1. महागीता भाग 1 (सा)
2. *महागीता भाग 2 (सा)
3. *महागीता भाग 3 (सा)
4. *महागीता भाग 4 (सा)
5. *महागीता भाग 5 (सा)
6. महागीता भाग 6 (डी)
7. महागीता भाग 7 (डी)
8. महागीता भाग 8 (डी)
9. महागीता भाग 9 (डी)

1. महावीर-वाणी भाग 1 (सा)
2. महावीर-वाणी भाग 2 (सा)
3. *महावीर-वाणी भाग 3 (सा)
4. जिन-सूत्र भाग 1 (डी)
5. जिन-सूत्र भाग 1 (सा)
6. जिन-सूत्र भाग 2 (डी)
7. जिन-सूत्र भाग 2 (सा)
8. जिन-सूत्र भाग 3 (सा)
9. जिन-सूत्र भाग 4 (डी)
10. महावीर या महाविनाय (सा)
11. महावीर मेरी दृष्टि में भाग 1 (सा)
12. महावीर मेरी दृष्टि में भाग 2 (सा)

लाओत्से

1. ताओ उपनिषद् भाग 1 (सा)
2. *ताओ उपनिषद् भाग 2
3. *ताओ उपनिषद् भाग 3 (डी)
4. *ताओ उपनिषद् भाग 3 (सा)
5. ताओ उपनिषद् भाग 4 (डी)
6. ताओ उपनिषद् भाग 5 (डी)
7. ताओ उपनिषद् भाग 6 (डी)

बुद्ध

1. एम धम्मो सन्तनो भाग 1 (डी)
2. एम धम्मो सन्तनो भाग 1 (सा)
3. *एम धम्मो सन्तनो भाग 2 (सा)
4. एम धम्मो सन्तनो भाग 3 (डी)
5. एम धम्मो सन्तनो भाग 3 (सा)
6. एम धम्मो सन्तनो भाग 4 (डी)
7. एम धम्मो सन्तनो भाग 5 (डी)
8. एम धम्मो सन्तनो भाग 6 (डी)

भैरव, सूफी और उपनिषद् की कहानियाँ

1. बिन बाती बिन तेल (सा)
2. सहज समाधि भली (सा)
3. दिया नले अंधेरा (डी)
4. दिया नले अंधेरा (सा)
1. भक्ति-सूत्र भाग 1 (नारद) (सा)
2. *भक्ति-सूत्र भाग 2 (नारद) (डी)
3. भक्ति-सूत्र भाग 2 (नारद) (सा)
4. *भज गोविन्दम (आदि जंकराचार्य) (सा)
5. *समाधि के सन्तद्वार (ब्रह्मायसजी)
6. माधना-सूत्र (मेविल कानिन्ग) (सा)

मुंशी प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य

उपन्यास

निर्मला	8.00
वरदान	12.00
मनोरमा	12.00
सेवासदन	15.00
गोदान	20.00
प्रेमाश्रम	20.00
कर्मभूमि	20.00
रंगभूमि-1-2	40.00
कार्याकल्प	20.00
प्रतिज्ञा व मंगलसूत्र	12.00
हृदीरानी व प्रेमा	12.00
गवत	15.00



कहानी संग्रह

मानसरोवर भाग-1-8 (प्रत्येक) 15.00

नाटक

कर्वला	12.00	संग्राम	12.00
--------	-------	---------	-------

जयशंकर प्रसाद

ग्रन्थावली (4 खण्डों में) प्रत्येक 40.00

जयशंकर प्रसाद की अन्य प्रकाशित पुस्तकें

काव्य	
कामायनी	8.00
आंसू	5.00
झरना	5.00 लहर
महाराणा का महत्व	2.00
प्रेम पथिक	3.00
नाटक	
चन्द्रगुप्त	10.00
स्कंदगुप्त	10.00
अजातशत्रु	6.00
धृवस्वामिनी	2.50
जनमेजय का नागयज्ञ	6.00
राज्यश्री 4.00 विशाख	6.00
कामना 6.00 एक घंट	4.00

शरतचन्द्र के उपन्यास

बैकुण्ठ का वसीयतनामा	10.00
देवदास	10.00
पॉडट जी	10.00
मंजली दीदी	10.00
दत्ता	10.00
शेष परिचय	15.00
बिराज बहू	10.00
परिणीता	10.00
गृहदाह	15.00
शेष प्रश्न	15.00
देना पावना	10.00
श्रीकान्त	20.00
चरित्रहीन	15.00
देहाती समाज	10.00
चन्द्रनाथ	15.00
शुभदा	10.00
विप्रदास	10.00
ब्राह्मण की बेटी	10.00



उपन्यास

कंकाल	15.00
तितली	15.00
इरावती	6.00

कहानी संग्रह

छाया	6.00
इन्द्रजाल	8.00
आकाशदीप	7.00
प्रतिध्वनि	5.00
आंधी	6.00

निबन्ध

काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	15.00
------------------------------	-------

भगवान श्रीरजनीश

मनुष्य की जो चरम संभावना है, वह भगवान श्री रजनीश में संभव हुई है। वे मनुष्य में बसी भगवत्ता के गौरीशंकर हैं। वे स्वयं भगवान हैं। भगवान श्री जगत और जीवन को उसकी परिपूर्णता में स्वीकारते हैं। वे पृथ्वी और स्वर्ग, चार्वाक और बुद्ध को जोड़ने वाले पहले सेतु हैं। उनके हाथों पहली बार अखंडित धर्म का, वैज्ञानिक धर्म का, जागतिक धर्म का प्रसार हो रहा है। यही कारण है कि जीवन-निषेध पर खड़े अतीत के सभी धर्म उनके विरोध में संयुक्त होकर खड़े हैं। भगवान श्री व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रथम मूल्य देते हैं। धर्म नहीं, धार्मिकता उनका मौलिक स्वर है।

उनके अब तक बोले वचनों की 500 पुस्तकें बन चुकी हैं और दुनिया की 35 से अधिक भाषाओं में अनुवादित-प्रकाशित हो रही हैं। सारी दुनिया में श्रेष्ठतम वैज्ञानिक, कलाकार और चैतन्य के खोजी भगवान श्री रजनीश द्वारा विशा निदेशित "वर्ल्ड अकादमी आफ क्रिएटिव साइंस, आर्ट्स एंड कान्शसनेस" में सम्मिलित हो रहे हैं और अपनी सारी ऊर्जा को सृजनशील में नियोजित कर रहे हैं। हंसते-गाते, उत्सव मनाते ये सृजनशील व्यक्ति "क्षण-क्षण जीने की कला" सीख रहे हैं और इसी दुनिया को स्वर्ग में रूपांतरित कर देने के आधार बन रहे हैं। संभावना पूरी है कि यह विधायक संयुक्त बुद्ध-ऊर्जा अणुबुद्ध को असंभव बना दे।

भगवान श्री मनुष्य-चेतना की सबसे बड़ी विभाजक रेखा हैं। समय दो खंडों में बंट चुका है — रजनीश-पूर्व और रजनीशोत्तर।



डायमंड पॉकेट बुक्स